वर्ष 2, अंक 8, अक्तूबर-2016
आश्विन, वि. सं. 2073, ₹ 50

मंगल विमर्श

त्रैमासिक

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

अंदर के पृष्ठों पर

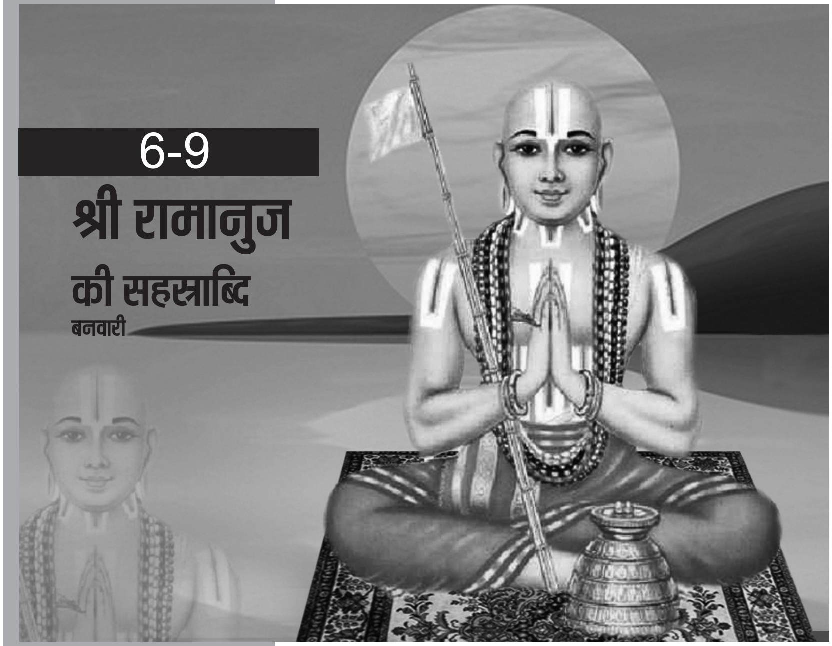

6-9
श्री रामानुज की सहस्राब्दि
बनवारी

10-21
सुमंगलम् : विकास की भारतीय संकल्पना
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

22-31
भाषा में वर्ण शिक्षादर्शन की उपेक्षा क्यों
डॉ. सुरेंद्र भटनागर

32-39
वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप की महानता
राजेंद्र सिंह गहलोत

40-45
भारतीय संस्कृति के दर्पण प्रेमचंद
डॉ. दीनदयाल

46-49
भौतिकता के अंधकार में अध्यात्म का दीपक
दयाप्रकाश सिन्हा

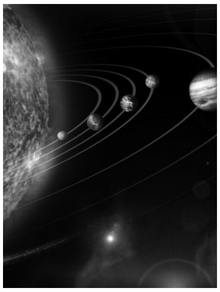

50-55
विज्ञान में परिवारवाद
डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल,
डॉ. आर.के. अवस्थी
डॉ. एस.एन मिश्रा

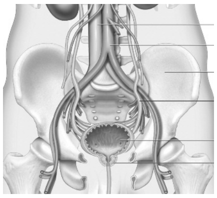

56-60
मूत्र कृच्छ रोग : कारण और निवारण
डॉ. ज्योत्सना

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संपादक
सुनील पांडेय

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

प्रकाशक एवं मुद्रक आदर्श गुप्ता द्वारा मंगल सृष्टि, सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 के लिए प्रकाशित एवं एक्सेल प्रिंट, सी-36, एफ एफ कॉम्पलेक्स, झंडेवाला, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

RNI
DELHIN/2015/59919
ISSN
2394-9929
ISBN
978-81-930883-6-4

फोन नं.
+91-9811166215
+91-11-27565018
ई-मेल
mangalvimarsh@gmail.com
वेब साइट
www.mangalvimarsh.in

मंगल विमर्श पत्रिका में व्यक्त विचारों के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं। संपादक, मुद्रक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

सभी विवादों का न्याय क्षेत्र केवल दिल्ली होगा।

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:13 PM Page 5

अथ

रियो ओलंपिक में साक्षी व सिंधु की सफलता से देश में उत्सवीय माहौल है। अखबारें तत्संबंधी प्रसंगों से सराबोर हैं, टी.वी. चैनल भी भाव-विभोर हैं। जितना पैसा खिलाड़ियों की कोचिंग पर नहीं खर्चा गया, उससे कहीं ज्यादा के पुरस्कारों से उन्हें लाद दिया गया है। जिस देश में लड़की के पैदा होने पर माँ-बाप का मुँह लटक जाता हो, वहाँ इन बेटियों की उपलब्धियों पर जश्न मनाना अस्वभाविक नहीं। यों भी रियो में हमारे लिए पहले बारह दिनों तक पदकों का सूखा ही पड़ा रहा। परिणामतः जड़ता व हताशा पसरने लगी। ऐसे माहौल में सिंधु व साक्षी द्वारा पोडियम पर चढ़ कर तिरंगा फहराना सराहनीय तो है ही।

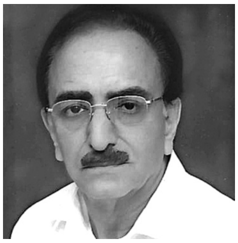

ओमीश परुथी
एसोसिएट प्रोफेसर (से.नि.)
प्रधान संपादक

यथार्थ के धरातल पर उतर कर आकलन किया जाए तो 120 करोड़ के देश में केवल दो पदकों का आना शोचनीय है। स्वतंत्रता प्राप्ति के एक साल बाद हमने ओलंपिक में एक पदक जीता था और आज 70 वर्ष बाद दो। कितनी प्रगति की है! सोच कर पीड़ा होती है। आज भारत में संसाधनों की कमी नहीं, फिर भी पदक तालिका में 67वें स्थान पर आना शर्मसार करता है। आखिर दोष कहाँ है? दरअसल हम खेलों के प्रति न गंभीर हैं, न प्रतिबद्ध। जवाबदेही की भी कोई बाध्यता नहीं। इस ओलंपिक में भारी विफलता की जिम्मेदारी लेने को कोई तैयार नहीं। कितनी बड़ी विडंबना है कि एक ओर इस बात के लिए आलोचना होती है कि हम तैयारी पर कम खर्च करते हैं; दूसरी ओर संसद में खेल मंत्री द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार जितना पैसा आवंटित था, वह भी पूरा खर्च नहीं हो पाया। हमसे निष्ठापूर्वक क्रियान्वयन भी नहीं होता।

अब तक हमारे देश में खिलाड़ियों के प्रशिक्षण की कोई दूरदृष्टि संपन्न योजनाबद्ध प्रक्रिया नहीं है, जैसी कि चीन, आस्ट्रेलिया, इंग्लैंड जैसे देशों में बरसों से अपनायी जा रही है। वहाँ छोटी उम्र से ही खिलाड़ियों की ट्रेनिंग प्रारंभ कर दी जाती है। चयनित खिलाड़ियों को हर प्रकार की सुविधा प्रदान की जाती है। चीन में तैराकी के लिए तीन-चार वर्ष के बच्चों को ही अपना लिया जाता है। इंग्लैंड में 12 वर्ष से कम आयु के लिए अलग से 1300 से अधिक जिम्नाजियम हैं। तभी वे इतने पदक जीत पाते हैं। हमारे देश में ऐसी योजनाबद्धता व दूरगामी सोच का नितांत अभाव है। राष्ट्र की प्रतिष्ठा बढ़ाने हेतु किए जाने वाले प्रयासों की कमी है। अगर कुछ है, तो भाई-भतीजावाद व ओछी राजनीति; जिसके चलते खिलाड़ियों की सुविधाओं के प्रति संवेदनशीलता कहीं दिखाई नहीं देती। हमें देश की प्रतिष्ठा बढ़ाने हेतु निष्ठापूर्वक प्रयास करने होंगे। तभी इस शिथिल, निराशाजनक परिदृश्य को बदला जा सकता है।

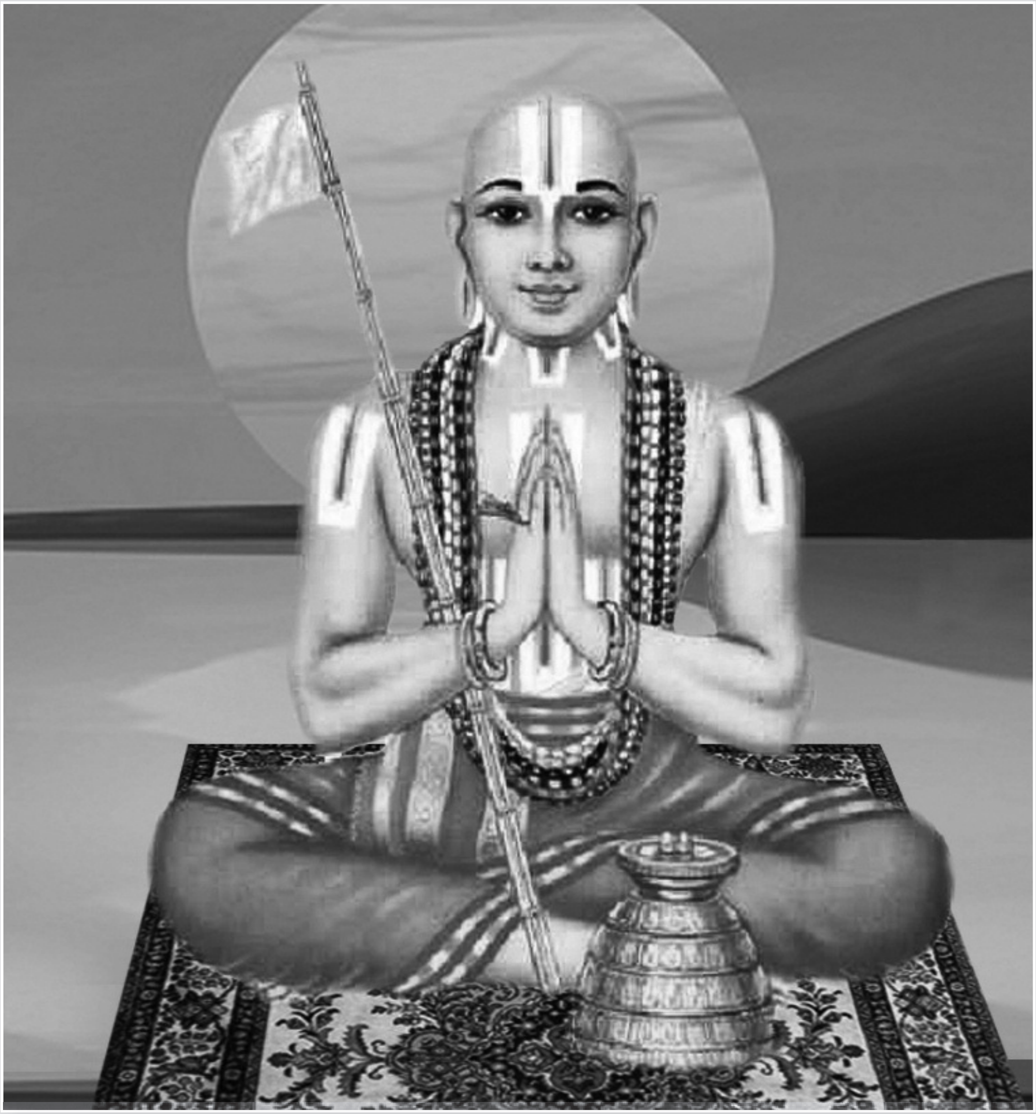

भारत एक अभिकेंद्री सभ्यता रहा है। वह अपने केंद्र की ओर उन्मुख रहते हुए निश्रेयस और अभ्युदय की दिशा में अग्रसर रहता है। वह एक साथ ही अपने आध्यात्मिक और भौतिक उन्नयन का मार्ग प्रशस्त करता रहा है। राजनीतिक शक्ति के अवरोह काल में भी हमारी जीवनी शक्ति क्षीण न हो, यह आवश्यक होता है। हमारी यह जीवनी शक्ति हमारे और दिव्य शक्तियों के संबंध की दृढ़ता पर आश्रित है। श्री रामानुज हमारी इस जीवनी शक्ति की रक्षा के लिए ही अवतरित हुए थे।

श्री रामानुज की सहस्राब्दि

बनवारी

यह वर्ष श्री रामानुज का सहस्राब्दि वर्ष है। हजार वर्ष पहले वे तमिलनाडु के श्री पेरुंबदूर ग्राम में अवतरित हुए थे। वह काल भारत के लिए अशनि संकेत था। पश्चिम से एक आँधी उठ रही थी। महात्मा गांधी के शब्दों में पश्चिम में ऐसी अपकेंद्री शक्तियाँ उभर रही थीं, जो अपने केंद्र से बाहर की ओर फैलती हैं और विध्वंस करती हुई चली जाती हैं। श्री रामानुज से लगभग तीन शताब्दी पहले इसलाम के रूप में एक ऐसी ही शक्ति उभरी थी। उसने उत्तरी अफ्रीका से लगाकर मध्य एशिया तक और मध्य सागर से लगाकर ईरान तक अपना विस्तार कर लिया था। भारत की ओर भी उसके अंधड़ आए थे। लेकिन तब तक भारत उन्हें निरस्त करने में सफल रहा था। लेकिन कालांतर में तुर्क और मंगोलों का आश्रय लेकर और उनके बाद यूरोपीय जातियों के रूप में यह अपकेंद्री शक्तियाँ भारत को पराभूत करने वाली थीं।

भारत एक अभिकेंद्री सभ्यता रहा है। वह अपने केंद्र की ओर उन्मुख रहते हुए निश्रेयस और अभ्युदय की दिशा में अग्रसर रहता है। वह एक साथ ही अपने आध्यात्मिक और भौतिक उन्नयन का मार्ग प्रशस्त करता रहा है। कालक्रम में राजवंश कमजोर पड़ते हैं। राजनीतिक शक्ति चली जाती है। सभी समाजों में शक्ति के आरोह और अवरोह का यह क्रम चलता रहता है। लेकिन राजनीतिक शक्ति के अवरोह काल में भी हमारी जीवनी शक्ति क्षीण न हो, यह आवश्यक होता है। हमारी यह जीवनी शक्ति हमारे और दिव्य शक्तियों के संबंध की दृढ़ता पर आश्रित है। श्री रामानुज हमारी इस जीवनी शक्ति की रक्षा के लिए ही अवतरित हुए थे। वे उस अशनि काल में हमारा मार्गदर्शन करने और हमें निराश हुए बिना परमात्मा की ओर उन्मुख किए रहने के लिए ही अवतरित हुए थे।

आधुनिक शिक्षा ने हमारे बीच जिस इतिहास बोध को प्रचलित कर दिया है, उसमें केवल राजनीतिक शक्ति की गणना होती है। इसी आधार पर हमारे अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में यह भावना फैली हुई है कि पिछली एक सहस्राब्दि हमारी निर्बलता की सहस्राब्दि थी। हमारी किसी सभ्यतागत कमजोरी के कारण एक के बाद एक आक्रमणकारी शक्तियों से हम परास्त होते रहे। इस इतिहास बोध ने हमारे पढ़े-लिखे वर्ग में एक गहरी आत्महीनता पैदा की है। इस आत्महीनता के कारण वह आज की प्रधान राजनीतिक शक्ति यूरोप-अमेरिका को उन्नत सभ्यता मानता है और उसका अनुकरण करने में लगा है। भारतीय सभ्यता कभी राजनीतिक शक्ति को केंद्र बनाकर विकसित नहीं हुई। वह सुदृढ़ शास्त्रीय आधार

पर विकसित हुई है। इसलिए राजनीतिक पराधीनता से हमारी सभ्यता पराभूत नहीं हो पाई। वह आज भी संसार की सर्वश्रेष्ठ सभ्यता है।

हमारी सभ्यता की नींव हमारी विश्व-दृष्टि है। हमारी इस विश्व-दृष्टि का मूल ईशावास्य मंत्र है। हमारा समूचा वाड्मय इस समूची सृष्टि में दिव्यता के दर्शन करते हुए ही रचा गया है। इसलिए हम एक ऐसी सभ्यता विकसित कर पाए जो सबके प्रति हमारे कर्तव्यों पर आधारित है। हम समाज के अन्य लोगों के प्रति ही कर्तव्य से बंधे नहीं हैं, हम नदी, पहाड़, वनस्पति, पशु-पक्षी सभी के प्रति कर्तव्यों से बंधे हुए हैं। सबके प्रति हमने आत्मभाव रखा है। कर्तव्य ही कर्म है और इसी कारण भारत भूमि कर्मभूमि रही है। संसार की अन्य सब भूमियाँ भोग भूमियाँ हैं, लेकिन भारत कर्मभूमि है। कर्म की स्वतंत्रता ही वास्तविक स्वतंत्रता है। इसलिए इस स्वतंत्रता की हमने अपने जीवन से भी बढ़कर रक्षा की है। पराधीनता के दौर में हमारा राजनीतिक तंत्र भले पराधीन हो गया हो, देशवासी स्वाधीन थे। यह समझ हमें गांधीजी में दिखाई देती है, जिन्होंने 'हिंद स्वराज' में लिखा कि अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग गुलाम होंगे, हमारे किसान तो स्वतंत्र और निर्भय हैं।

हमारी सभ्यता की नींव हमारी विश्व-दृष्टि है। हमारी इस विश्व दृष्टि का मूल ईशावास्य मंत्र है। हमारा समूचा वाड्मय इस समूची सृष्टि में दिव्यता के दर्शन करते हुए ही रचा गया है। इसलिए हम एक ऐसी सभ्यता विकसित कर पाए जो सबके प्रति हमारे कर्तव्यों पर आधारित है।

हमारी इस विश्व-दृष्टि का पुनः-पुनः स्मरण करवाते रहने के लिए ही आचार्य आते हैं। इसलिए इस अशनि काल में एक के बाद एक आचार्य आए। पहले श्री रामानुज आए, फिर निम्बार्क आए, मध्वाचार्य आए और वल्लभाचार्य आए। इन चार वैष्णव आचार्यों ने और असंख्य पीठाधिपतियों ने हमें अपने और ब्रह्म के बीच के संबंध का अनेक विध स्मरण करवाया। श्री रामानुज ने इस संबंध को विशिष्टाद्वैत के रूप में देखा। श्री निम्बार्क ने उसे द्वैताद्वैत के रूप में देखा। श्री मध्वाचार्य ने उसे द्वैत के रूप में देखा और श्री वल्लभाचार्य ने उसे शुद्धाद्वैत के रूप में देखा। आप पाएँगे कि आदिशंकराचार्य के अद्वैत सिद्धांत से लगाकर इन चारों वैष्णव आचार्यों के सिद्धांतों तक जो दृष्टियाँ व्याख्यायित हुईं, उन्होंने जीव, जगत और ब्रह्म के बीच के इस संबंध को हमें सभी संभव रूपों में दिखा दिया।

सभ्यताओं के निर्माण में इस दृष्टि का कितना महत्त्व होता है, यह हम इस उदाहरण से समझ सकते हैं। हालफास की एक पुस्तक है इंडिया और यूरोप, इसमें पिछले दो हजार वर्ष में भारत और यूरोप के बीच जो संपर्क-संवाद हुआ, उसकी समीक्षा की गई है। अपनी इस पुस्तक में उन्होंने एक कथा का उल्लेख किया है। यह कथा यूरोप की स्मृति में गुंथी रही है। कथा यह है कि भारत का एक साधु सुकरात से मिलता है। वह सुकरात से पूछता है कि वे क्या जानना चाहते हैं। सुकरात ने उत्तर दिया कि वे मनुष्य की नियति को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह उत्तर सुनकर वह साधु बहुत हँसा। विस्मित होकर सुकरात ने उसके हँसने का कारण पूछा तो उसने कहा कि जब तक तुम मनुष्य का परमात्मा से संबंध क्या है, इसे नहीं समझ लेते तब तक मनुष्य की नियति को कैसे समझ सकते हो?

यूरोप की मुश्किल यह है कि वहाँ जो ईसाई दृष्टि और सांसारिक दृष्टि विकसित हुई, वह जीव, जगत् और ब्रह्म में कोई संबंध ही नहीं देखती। उसके अनुसार ईश्वर सृष्टि के बाहर है। वह सर्वशक्तिमान होने के कारण सृष्टि को नियंत्रित तो करता है, पर उसका सृष्टि से संबंध नहीं है।

सृष्टि उसकी रचना है, पर वह उसने अपने अंश से नहीं रची, वह उसने असत् से रची है। मनुष्य ईश्वर को जान नहीं सकता। ईश्वर समय-समय पर एक देवदूत भेजकर किसी चुने हुए व्यक्ति को अपनी संप्रभुता का भान करवाता है। उस मसीहा के वचन पर विश्वास करके ही मनुष्य ईश्वर के बारे में जान पाते हैं। इसलिए चर्च का कार्य सब मुनष्यों को ईसाइयों के ईश्वर के अधीन करना है। इसी के लिए वह दुनियाभर की राजसत्ताओं पर दबाव डालकर धर्मांतरण की छूट लिए रहते हैं। पिछली कुछ शताब्दियों में इस्लाम और ईसाई मत के नाम पर पश्चिमी अपकेंद्री शक्तियों ने जो विश्व-दृष्टि थोपी है, वह आज की सबसे बड़ी समस्या है। अरबों या यूरोपीय जाति का औपनिवेशिक नियंत्रण कालक्रम में समाप्त हो गया। लेकिन धर्मांतरण के द्वारा दुनिया की एक बड़ी आबादी पर उन्होंने अपनी जो विश्व-दृष्टि थोप दी है वह आज भी समस्या बनी हुई है। सृष्टि को अनात्म देखने के कारण यूरोप स्वेच्छाचारी हो गया है और मध्य-पूर्व आतंकवाद का जनक। राजनीतिक स्वतंत्रता मिलने के बावजूद हमने उनकी राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक तंत्र और शिक्षा व्यवस्था जारी रखी, जिसके कारण उनकी विश्व-दृष्टि हमारे यहाँ अभी भी फल-फूल रही है। हमारा समाज बिखर रहा है। हम कर्तव्य भूल गए हैं। चारों तरफ अधिकारों की ही छीन-झपट मची हुई है। हमारी राजनीतिक व्यवस्था नियंत्रणकारी है, हालांकि राज्य की शक्ति को समाज में कोई गिनता नहीं है। इसलिए अराजकता जैसी स्थिति बनी हुई है। हमारे जीवन में गुणवत्ता की जगह गुणहीन उपभोग की भरमार हो रही है। सारा अर्थतंत्र प्रकृति और जीवसृष्टि के विरुद्ध है। सकल उत्पादन की मरीचिका में हम सबको कार्यक्षम बनाने और सबका पेट भरने की बजाय उच्च वर्ग और मध्य वर्ग के निर्माण में लगे हैं। अपने सार्वजनिक जीवन में हमने स्वेच्छाचार को बढ़ावा देना आरंभ कर दिया है।

हमने अपने इतिहासबोध को बनाए रखा होता तो पिछले हजार वर्ष की स्मृति हमने अपने वैष्णव आचार्यों के अवतरण और तुलसीदास, चैतन्य महाप्रभु और शंकरदेव जैसे महापुरुषों के उदय के रूप में की होती। अपनी इस परंपरा के कारण ही हम अपनी जीवनी शक्ति को बचाकर रख पाए हैं।

अगर हमने अपने इतिहासबोध को बनाए रखा होता तो पिछले हजार वर्ष की स्मृति हमने अपने वैष्णव आचार्यों के अवतरण और तुलसीदास, चैतन्य महाप्रभु और शंकरदेव जैसे महापुरुषों के उदय के रूप में की होती। अपनी इस परंपरा के कारण ही हम अपनी जीवनी शक्ति को बचाकर रख पाए हैं। अगर हमारा सार्वजनिक जीवन सब तरह के दबाव के बाद भी आज सनातन धर्म से ओतप्रोत है तो उसका श्रेय हमारे इन आचार्यों को ही है। अगर हमारी शिक्षा-दीक्षा ने हमारे इतिहासबोध को हमारे पढ़े-लिखे लोगों में क्षीण न कर दिया होता, तो आज देश के सभी शिक्षा संस्थान श्री रामानुज की सहस्राब्दि मनाते हुए हमारी आचार्य परंपरा का पुण्य स्मरण कर रहे होते और अपनी विश्व दृष्टि में अपनी निष्ठा दोहरा रहे होते। यह हमारा दुर्भाग्य है कि ऐसा हो नहीं रहा। चेन्नई के श्री वरदराजन और श्रीगुरुमूर्ति के प्रयत्न से श्रीभागवत् रामानुजाचार्य दर्शन कैंकर्य न्यास देशभर में गोष्ठियाँ आयोजित करने का प्रयत्न कर रहा है। ऐसा एक सफल आयोजन इस वर्ष जुलाई में चेन्नई में हुआ, जिसमें श्री रामानुजाचार्य के जीवन और वचनों का पुण्य स्मरण किया गया। ऐसे आयोजन देश के सब भागों में होने चाहिएँ।

लेखक चिंतक व वरिष्ठ पत्रकार हैं।

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:13 PM Page 10

प्रचलित पश्चिमी विकास मॉडल हमारी समस्याओं के समाधान में असमर्थ एवं असफल हैं, क्योंकि पश्चिमी दृष्टिकोण एक ऐसे 'आर्थिक मनुष्य' की अवधारणा पर आधारित है जिसके निर्णय मात्र वित्तीय एवं भौतिक संपत्ति के रूप में लाभ-हानि की गणनाओं पर आधारित होते हैं, किंतु भारतीय दृष्टिकोण 'आर्थिक मनुष्य' की इस अवधारणा को पूर्णतया नकार कर इसके स्थान पर 'एकात्म मानव' की अवधारणा को प्रस्तुत करता है। भारत के लिए एक ऐसी तकनीक की आवश्यकता है जो इसकी विशिष्ट प्रकृति, आवश्यकताओं, जीवनादर्शों व मूल्यों के अनुकूल हो, देश के सामने उपस्थित समस्याओं का उचित ढंग से एवं उचित समय में समाधान कर सके और जो देश की वर्तमान सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में काम कर सके। हमारी तकनीक प्रकृति के शोषण पर नहीं बल्कि प्रकृति माता के दोहन पर आधारित होनी चाहिए। इस दृष्टि से हमें एक ऐसी प्रणाली का विकास करना होगा जिससे वस्तुओं का स्वस्थ उपभोग और प्रसन्नता पूर्वक उत्पादन हो सके। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ. बजरंगलाल गुप्ता **ने भारत के लिए एक ऐसी ही प्रणाली 'सुमंगलम्' की संकल्पना की है, जिसकी मोटी रूपरेखा इस लेख में प्रस्तुत की गई है-**

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:13 PM Page 11

डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

सुमंगलम्

विकास की भारतीय संकल्पना

आज समूचे संसार में विशेषज्ञों एवं चिंतकों के बीच एक प्रकार की आम सहमति उभरती हुई दिखाई देती है कि प्रचलित पश्चिमी विकास मॉडल हमारी समस्याओं के समाधान में असमर्थ एवं असफल हैं, अतः विकास के एक नए प्रतिमान को तलाशना एक अनिवार्य आवश्यकता है। इस प्रपत्र में पश्चिमी विकास मॉडल के विरोधाभासों एवं कमियों को दर्शाने और एक नए विकास-पथ की एक मोटी रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

पश्चिमी विकास मॉडल के आधारभूत तत्त्व एवं विसंगतियाँ

- **आर्थिक मनुष्य की अवधारणा**

  पश्चिमी विकास मॉडल की मान्यता के अनुसार मनुष्य प्रत्येक निर्णय धन के आधार पर करता है। ऐसा मान लेने पर देश में लूट-खसोट, कालाबाजारी, मुनाफाखोरी, घोटाला, शोषण जैसी प्रवृत्तियों को बल मिलेगा।

- **विकास को जी.डी.पी. के रूप में परिभाषित करना**

  प्रति व्यक्ति वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) गणना अधूरी व दोषपूर्ण है। इसमें महिलाओं के गृहकार्य, स्व-उपभोग के लिए उत्पादन, सामाजिक-स्वैच्छिक कार्यों आदि को शामिल नहीं किया जाता। दूसरी ओर पेड़ काटकर फर्नीचर बनाने, मोटरवाहन से सैर पर जाने से फैलने वाले प्रदूषण, कारखानों की चिमनी के धुएँ आदि को गणना से बाहर नहीं किया जाता। अतः आज जीडीपी आधारित विकास

ऊर्जा भक्षी उत्पादन-तकनीक एवं उत्पादन-तंत्र के संचालन के लिए पूंजी निवेश पर जोर, इसके फलस्वरूप विकासशील देशों का विदेशी कर्ज संकट, विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते हस्तक्षेप एवं देश की स्वतंत्रता व सार्वभौमिकता को खतरा जैसी समस्याओं से घिरते जा रहे हैं।

अव्याव‍हारिक एवं असंगत हो गया है।

- **अधिकाधिक उपभोग बना जीवन का लक्ष्य**
  अधिकाधिक वस्तुओं व सेवाओं का उपभोग करते हुए रहन-सहन स्तर में वृद्धि को ही जीवन का लक्ष्य मान लिया गया है। इससे उपभोक्तावाद एवं भोगवादी जीवनशैली को बढ़ावा मिलता है, जो आज सब प्रकार की आर्थिक समस्याओं एवं संकट के लिए जिम्मेदार है।
- **उपभोग की सतत वर्धमान आकांक्षा व लालसा**
  - प्राकृतिक संसाधनों का बेरहमी से भरपूर शोषण, इसके परिणामस्वरूप पर्यावरण हानि एवं प्रदूषण की समस्या बढ़ती जा रही है।
  - ऊर्जाभक्षी तकनीक : मशीन-चालित ऊर्जाभक्षी तकनीक पर आधारित बड़े-बड़े उद्योगों वाले उत्पादन-तंत्र का निर्माण करना। इसके परिणामस्वरूप ऊर्जा-संकट एवं बेरोजगारी की समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं।
- **विदेशी पूंजी निवेश पर जोर**
  इस उत्पादन-तकनीक एवं उत्पादन-तंत्र के संचालन के लिए (सामाजिक-सांस्कृतिक व मानवीय कारकों को स्थिर मानते हुए) पूंजी निवेश पर जोर, इसके फलस्वरूप विकासशील देशों का विदेशी कर्ज संकट, विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते हस्तक्षेप एवं देश की स्वतंत्रता व सार्वभौमिकता को खतरा जैसी समस्याओं से घिरते जा रहे हैं।

इस मॉडल को अपनाकर दुनिया के चंद देशों ने विकास

के नाम पर जो कुछ हासिल किया है, उसे देखकर दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं-

- क्या इसे सही मायने में मनुष्य को सुखी बनाने वाला विकास कहा जा सकता है?
- क्या इस प्रकार के विकास को दुनिया के सब देशों व सब मनुष्यों के लिए उपलब्ध करा पाना संभव और व्यावहारिक है, अथवा क्या यह एक व्यवहारक्षम और धारणक्षम विकास-मार्ग (Practicable and sustainable development path) है?

तथ्यों के आलोक में जब हम इन प्रश्नों की जाँच करते हैं तो इन दोनों ही प्रश्नों का उत्तर 'ना' में पाते हैं। विश्व जनसंख्या के 20 प्रतिशत भाग वाले संपन्न देश अपने उपभोग व उत्पादन-ढाँचे एवं जीवनशैली के लिए विश्व

के कुल संसाधनों के 80 प्रतिशत भाग का उपयोग करते हैं। इनके पास विश्व के कुल भू-क्षेत्र का 50 प्रतिशत भाग है, ये 60 प्रतिशत ऊर्जा का उपभोग करते हैं और विश्व की कुल आय में इनका 85 प्रतिशत हिस्सा है। विकास की ललक में इन देशों ने न केवल अपने लिए ही बल्कि समूचे प्राणिमात्र के लिए ही अस्तित्व का संकट खड़ा कर दिया है। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण और मृदा प्रदूषण के कारण हमारे चारों और प्रदूषित पर्यावरण का घेरा गहरा होता जा रहा है। इतना ही नहीं, मानवीय संबंध, संवेदनाएँ एवं भाव-भावनाएँ भी प्रदूषित होती जा रही हैं।

इन तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दुनिया के सब देश यदि पश्चिम के विकसित देशों और विशेषकर अमेरिका के रहन-सहन स्तर को प्राप्त करना अपने विकास का लक्ष्य मान लें, तो विश्व के वर्तमान ज्ञात संसाधनों के द्वारा इस लक्ष्य तक पहुँच पाना किसी भी प्रकार संभव ही नहीं हो सकता। इसके अलावा विकास की इस तकनॉलॉजी को दुनिया के सब देशों द्वारा अपना लेने पर बड़ी भारी मात्रा में उत्पन्न ग्रीन हाउस गैसों के विषैले बने पर्यावरण में कैसे जीवन संभव हो पाएगा, इसकी कल्पना ही अपने आप में भयावह है। अतः विकास की वर्तमान तकनीक न तो व्यवहार्य है और न ही धारणक्षम (टिकाऊ)।

एक नई राह धर्माश्रयी मानव-केंद्रित सर्वंकश दृष्टिकोण : सुमंगलम् की अवधारणा

विकास के अर्थ एवं माप को लेकर अर्थशास्त्रियों के बीच गंभीर मतभेद हैं। विकास को मापने के लिए भिन्न-भिन्न अर्थशास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न मापदंड सुझाएँ हैं, उदाहरण के लिए सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.), प्रति व्यक्ति जी.डी.पी., प्रति व्यक्ति उपभोग, आर्थिक कल्याण आदि, किंतु वास्तविक

व्यवहार में विकास को मापने के लिए प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. के सूचक का ही प्रयोग किया जाता है और इसके आधार पर ही विश्व की अर्थव्यवस्थाओं को विकसित अर्थव्यवस्था, विकासशील अर्थव्यवस्था और अविकसित अर्थव्यवस्था के रूप में वर्गीकृत किया गया है। 1990 से मानव विकास सूचक (एच.डी.आई.) के रूप में एक नई अवधारणा का जन्म हुआ है। मानव विकास की अवधारणा यह बताती है की विकास का उद्देश्य एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना है जिसमें लोग दीर्घ, स्वस्थ एवं सृजनात्मक जीवन जी सकें । मानव विकास सूचक में तीन सूचक शामिल हैं-जीवन प्रत्याशा, शैक्षिक उपलब्धि और वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद। इस प्रकार यह प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद का एक विकल्प है और अब विभिन्न देशों की प्रगति को मापने के लिए इसका प्रयोग तेजी से बढ़ता जा रहा है। अब प्रश्न यह उठता है कि इन दो मापदंडों–प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. और मानव विकास सूचक में कौन-सा अधिक उपयुक्त है। पश्चिमी विकास-अर्थशास्त्र इस प्रश्न का कोई निश्चित उत्तर नहीं दे पा रहा है। इसके

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 14

'सुख' शब्द शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा से संबंधित एक बड़ी व्यापक अवधारणा है, जिसे मात्र आर्थिक उपयोगिताओं के रूप में प्रकट नहीं किया जा सकता। एक ओर हमें मनुष्य को जीवन के अस्तित्व एवं उसके सामाजिक-पारिवारिक दायित्वों के निर्वाह के लिए आवश्यक सभी वस्तुएँ व सेवाएँ उपलब्ध करानी होंगी तथा दूसरी ओर उसके मन, बुद्धि और आत्मा की संतुष्टि के लिए भी प्रावधान करने होंगे।

अलावा मानव विकास सूचक की सीमा को भी स्वयं मानव विकास रिपोर्ट (1995) में ही स्वीकार कर लिया गया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विकास के अर्थ और माप के बारे में आधुनिक अर्थशास्त्रियों में ही जबर्दस्त भ्रम एवं विवाद हैं। विकास की पश्चिमी अवधारणा मानव मन के मंगल एवं आनंद के साथ सुसंगत साबित नहीं हो पा रही है। अतः अब एक नए दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो एक एकात्म मानव के सर्वतोमुखी विकास को सुनिश्चित कर सके। इसी दृष्टि से यहाँ 'सुमंगलम्' के रूप में एक नई अवधारणा को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

सुमंगलम् (या मंगल विकास) से तात्पर्य है मुख्यतः स्वसाधनों से देश के समस्त लोगों के जीवन-स्तर को ऊपर उठाते हुए दीर्घकालीन समग्र सामाजिक सुख में वृद्धि करना।

इस परिभाषा में प्रयुक्त 'जीवन-स्तर' शब्द सामान्यतः प्रयोग में लाए जाने वाले 'रहन-सहन' स्तर शब्द से अधिक व्यापक अर्थ वाला है। रहन-सहन स्तर को तो सामान्यतः उपभोग के लिए वस्तुओं व सेवाओं की प्रति व्यक्ति उपलब्धि के रूप में ही परिभाषित किया जाता है किंतु जीवन स्तर में कई अन्य बातें भी शामिल होती हैं जैसे-जीवनादर्श एवं जीवनमूल्य आदि। इस प्रकार रहन-

सहन का स्तर मनुष्य के केवल आर्थिक व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करता है जबकि जीवन स्तर से मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है।

इसी प्रकार 'सुख' शब्द भी शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा से संबंधित एक बड़ी व्यापक अवधारणा है, जिसे मात्र आर्थिक उपयोगिताओं के रूप में प्रकट नहीं किया जा सकता। एक ओर हमें मनुष्य को जीवन के अस्तित्व एवं उसके सामाजिक-पारिवारिक दायित्वों के निर्वाह के लिए आवश्यक सभी वस्तुएँ व सेवाएँ उपलब्ध करानी होंगी तथा दूसरी ओर उसके मन, बुद्धि और आत्मा की संतुष्टि के लिए भी प्रावधान करने होंगे।

इस प्रक्रिया में हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि इसके द्वारा देश में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के जीवन स्तर अथवा सुख में वृद्धि हो। यह समतावादी दृष्टिकोण न्याय के साथ विकास की ओर संकेत करता है। यह हमें 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' के भारतीय दृष्टिकोण का स्मरण कराता है।

यहाँ 'स्वसाधन' शब्द का प्रयोग देश में उपलब्ध साधनों का प्रयोग करते हुए स्वदेशी दर्शन पर आधारित स्वावलंबी अर्थव्यवस्था खड़ी करने पर जोर देने के लिए किया गया है। स्वदेशी दर्शन का अर्थ है अपने शाश्वत जीवन मूल्यों के प्रकाश में और अपने देश की प्रकृति, संस्कृति की आवश्यकताओं एवं सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के संदर्भ में मुख्यतः अपने ही शक्ति-सामर्थ्य, साधन संपदाओं एवं कौशल प्रतिभाओं के बलबूते पर देश की कर्मशक्ति एवं इच्छा शक्ति के जागरण के माध्यम से एक धारणक्षम, संस्कारक्षम एवं सर्वतोमुखी विकास का मॉडल खड़ा करना।

सुमंगलम् की आधारभूत विशेषताएँ

- **एकात्म मानव की अवधारणा :** पश्चिमी दृष्टिकोण एक ऐसे 'आर्थिक मनुष्य' की अवधारणा पर आधारित है जिसके निर्णय मात्र वित्तीय एवं भौतिक संपत्ति के रूप में लाभ-हानि की गणनाओं पर आधारित होते हैं, किंतु भारतीय दृष्टिकोण 'आर्थिक मनुष्य' की इस अवधारणा को पूर्णतया नकार कर इसके स्थान पर 'एकात्म मानव' की अवधारणा को प्रस्तुत करता है।

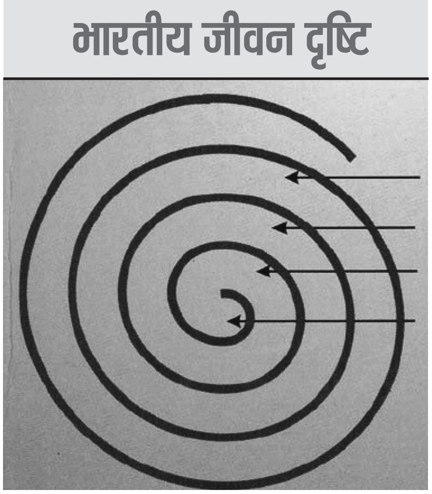

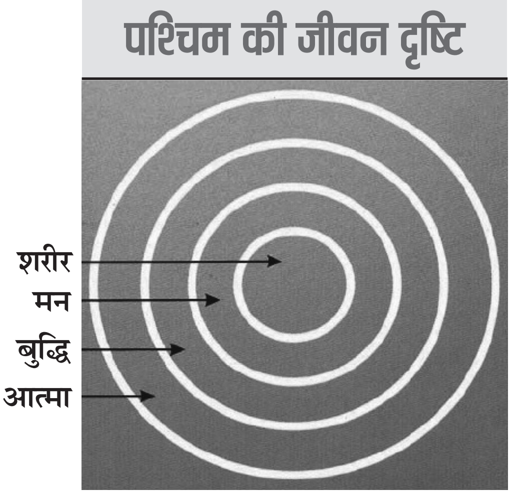

भारतीय चिंतकों ने मनुष्य को केवल अपनी जैविक एवं भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यंत्रवत् काम करने वाली किसी भौतिक एवं स्थूल इकाई के रूप में ही नहीं देखा है, बल्कि वे तो उसे सर्वव्यापक ब्रह्म के स्वरूप में सूक्ष्म एवं चैतन्य 'एकात्म मानव' के रूप में ही स्वीकार करते हैं। इस प्रकार भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य आर्थिक इकाई से कहीं अधिक बड़ी व व्यापक इकाई है।

- **विकास की प्रक्रिया में सामाजिक-सांस्कृतिक-मानवीय कारकों की अधिक सक्रिय भूमिका :** विकास को सुमंगलम् के अनुरूप परिभाषित करने के बाद हमें विकास के निर्धारक-कारकों के बारे में भी अपने दृष्टिकोण में बदल करना होगा। विकास के कारकों को साधारणतया दो भागों में बाँटा जाता है- आर्थिक कारक एवं गैर-आर्थिक कारक। यद्यपि विकास-योजनाओं में हम गैर-आर्थिक कारकों के महत्त्व को स्वीकार करते हैं किंतु वास्तविक-प्रक्रिया के दौरान हम उनकी उपेक्षा करते हैं। किसी भी प्रकार का विकास मॉडल बनाते समय हम इन कारकों को 'स्थिर' मानकर चलते हैं। अब हमें इस दृष्टिकोण को छोड़कर मानवीय कारकों की अधिक सक्रिय भूमिका वाले मॉडल के बारे में विचार करना होगा।

धर्म का अर्थ उन सामाजिक-नैतिक नियमों एवं मर्यादाओं से है जो समाज के सुचारु संचालन और संतुलित विकास के लिए आवश्यक हैं। भारतीय चिंतन के अनुसार नैतिकता अथवा धर्म को अर्थशास्त्र एवं आर्थिक नियमों से न तो अलग किया जा सकता है और न ही अलग किया जाना चाहिए।

भारत जैसे विकासशील देश में आर्थिक संसाधनों विशेषतः पूंजी की कमी है। विदेशी ऋण एवं विदेशी निवेश के द्वारा भी इस कमी को पूरा नहीं किया जा सकता और फिर इसके अनेक नकारात्मक पहलू भी हैं। अतः यदि भारत जैसे देशों को अपने विकास की गति को बढ़ाना है, तो पूंजी-निवेश में वृद्धि करने के अलावा अन्य वैकल्पिक मार्ग के बारे में भी विचार करना होगा। इस दृष्टि से विकास-प्रक्रिया में सामाजिक-मानवीय कारकों की भूमिका सामने आती है। यह एक नई राह है जो एक नए दृष्टिकोण और नए प्रकार के विकास-मॉडल को जन्म देगी।

- **धर्म अथवा नैतिकता विकास मॉडल के आधार** धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण करना, निर्वाह करना और पोषण करना। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि 'धर्म' की अवधारणा ऐसी व्यवस्थाओं एवं क्रियाकलापों का नाम है जो मनुष्य जीवन का धारण, निर्वाह और पोषण करती हैं। इस दृष्टि से धर्म का अर्थ उन सामाजिक-नैतिक नियमों एवं मर्यादाओं से है जो समाज के सुचारु संचालन और संतुलित विकास के लिए आवश्यक हैं। भारतीय

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 17

भारतीय दर्शन एक समग्र समन्वित एवं संतुलित दृष्टिकोण में विश्वास रखता है। हमें एक ऐसी आर्थिक प्रणाली का विकास करना होगा जिससे व्यष्टि और समष्टि के बीच उचित समन्वय बनाए रखा जा सके। आर्थिक क्षेत्र में किसी एक सीमा तक स्वतंत्रता एवं स्वहित की प्रेरणा का महत्त्व होता है, किंतु इसे नैतिक मूल्यों एवं वैधानिक प्रावधानों के माध्यम से सार्वजनिक हित में निर्देशित एवं नियमित भी किया जाना चाहिए। निजी उद्यम के साथ-साथ सामाजिक-नियंत्रण के लिए भी स्थान हो।

चिंतन के अनुसार नैतिकता अथवा धर्म को अर्थशास्त्र एवं आर्थिक नियमों से न तो अलग किया जा सकता है और न ही अलग किया जाना चाहिए। इसी बात को समझाते हुए गांधी जी ने कहा था-

"I must confess that I do not draw a sharp or any distinction between economics and ethics-Economics that hurts the moral well-being of an individual or a Nation is immoral and therefore sinful."

डॉ. वी.के.आर.वी.राव भी इस मत के थे कि आर्थिक विकास और आध्यात्मिक मूल्यों के बीच समन्वय होना चाहिए। प्रो. गुन्नर मिर्डल ने भी कहा था कि अर्थशास्त्र एक नैतिक विज्ञान है। भारतीय जीवन मूल्यों के अनुसार, अर्थ एवं काम के महत्त्व को स्वीकार करने के बावजूद भी इस बात पर सदैव जोर रहा है कि वे हमेशा धर्म (नैतिक नियमों) के अनुसार चलें और इसका उपयोग भी धर्म अर्थात् सामाजिक हित के लिए होता रहे।

इस प्रकार भारतीय दृष्टिकोण हमें उन सामाजिक-नैतिक मूल्यों की याद दिलाता है जिनके आधार पर युगानुकूल सामाजिक-आर्थिक संरचना का निर्माण किया जाना चाहिए। इसके अनुसार संग्रह की बजाय त्याग, स्वार्थ की बजाय सेवा, शोषण की बजाय पोषण, संघर्ष की बजाय सहयोग, घृणा की बजाय स्नेह और संपत्ति पर पूर्ण स्वामित्व की बजाय ट्रस्टीशिप इस नई अर्थरचना के आधार-सूत्र होने चाहिएँ।

- **समन्वित दृष्टिकोण :** भारतीय दर्शन एक समग्र समन्वित एवं संतुलित दृष्टिकोण में विश्वास रखता है। हमें एक ऐसी आर्थिक प्रणाली का विकास करना होगा जिससे व्यष्टि और समष्टि के बीच उचित समन्वय बनाए रखा जा सके। आर्थिक क्षेत्र में किसी एक सीमा तक स्वतंत्रता एवं स्वहित की प्रेरणा का महत्त्व होता है, किंतु इसे नैतिक मूल्यों एवं वैधानिक प्रावधानों के माध्यम से सार्वजनिक हित में निर्देशित एवं नियमित भी किया जाना चाहिए। निजी उद्यम के साथ-साथ सामाजिक-नियंत्रण के लिए भी स्थान हो। इसके अलावा हमें सामाजिक-आर्थिक जीवन के विभिन्न तत्त्वों के बीच उचित तालमेल बनाए रखने का भी प्रयास करना होगा।
- **न्यायपूर्ण वितरण :** सामाजिक न्याय के साथ विकास यद्यपि धनार्जन जीवन का एक महत्त्वपूर्ण क्रियाकलाप है, किंतु मनुष्य जीवन का यह एकमात्र क्रियाकलाप नहीं हो सकता और न ही यह अपने आप में जीवन का अंतिम उद्देश्य ही हो सकता है। चार पुरुषार्थों (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) में यह केवल एक पुरुषार्थ है। इस प्रकार यह

आधुनिक तकनीक को देश की आवश्यकताओं एवं संसाधनों के अनुकूल बनाना। विदेशी तकनीक का सीधा हस्तांतरण एक खतरनाक प्रक्रिया है। तकनीक को इस प्रकार ढालना होगा जिससे कि वह हमारे निर्धारित मूल्यों व लक्ष्यों को कमजोर करने की बजाए उनका संरक्षण व संवर्धन कर सके।

जीवन का एक भाग है, संपूर्ण जीवन नहीं। यही कारण है कि भारतीय दृष्टिकोण में इस बात पर जोर दिया गया है कि धनार्जन हमेशा वैधानिक मार्ग से, उचित प्रकार और नैतिकता से ही होना चाहिए (धर्मेण धनः)। इसके अलावा भारतीय दृष्टिकोण का यह भी विश्वास है कि व्यक्ति को स्वयं ही सब वस्तुओं का उपभोग नहीं करना चाहिए बल्कि समाज के अन्य लोगों के साथ बाँटकर उपभोग करना चाहिए। अतिरिक्त संपत्ति को समाज के कल्याण के लिए प्रयोग में लाना चहिए। उद्देश्य 'धर्माय धनः' का होना चाहिए।

वितरण की सर्वोत्तम प्रणाली वह होगी जो अर्थ व्यवस्था का पोषण करती हो, इसे शोषण से मुक्त रखती हो, इसकी उत्पादकता में वृद्धि करती हो और सबको जीवन चलाने और प्रगति करने के समान अवसर प्रदान करती हो। इस प्रकार एक समुचित वितरण प्रणाली का आधारभूत तत्त्व होगा- सामाजिक न्याय के साथ सतत् विकास।

- **मानव-केंद्रित पर्यावरण प्रेमी तकनीक :** भारत के लिए एक ऐसी तकनीक की आवश्यकता है जो इसकी विशिष्ट प्रकृति, आवश्यकताओं, जीवनादर्शों व मूल्यों के अनुकूल हो, देश के सामने उपस्थित समस्याओं का उचित ढंग से एवं उचित समय में समाधान कर सके और जो देश की वर्तमान सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में काम कर सके। हमारी तकनीक प्रकृति के शोषण पर नहीं बल्कि प्रकृति माता के दोहन पर आधारित होनी चाहिए। हमें एक ऐसी तकनीक की आवश्यकता है जो पूँजी व ऊर्जा की बचत कर सके और जो श्रम गहन होने के साथ-साथ उत्पादकता में भी वृद्धि कर सके।

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 19

भारत के लिए एक ऐसी तकनीक की आवश्यकता है जो इसकी विशिष्ट प्रकृति, आवश्यकताओं, जीवनादर्शों व मूल्यों के अनुकूल हो, देश के सामने उपस्थित समस्याओं का उचित ढंग से एवं उचित समय में समाधान कर सके और जो देश की वर्तमान सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में काम कर सके। हमारी तकनीक प्रकृति के शोषण पर नहीं बल्कि प्रकृति माता के दोहन पर आधारित होनी चाहिए।

उपयुक्त तकनीक के विकास के लिए भारत को एक साथ दो दिशाओं में प्रयास करने होंगे-

- देश में पहले से उपलब्ध परंपरागत तकनीक में सुधार करना। भारत के भावी विकास की दृष्टि से इस क्षेत्र में बहुत अधिक संभावनाएँ मौजूद हैं।
- आधुनिक तकनीक को देश की आवश्यकताओं एवं संसाधनों के अनुकूल बनाना। विदेशी तकनीक का सीधा हस्तांतरण एक खतरनाक प्रक्रिया है। तकनीक को इस प्रकार ढालना होगा जिससे कि वह हमारे निर्धारित मूल्यों व लक्ष्यों को कमजोर करने की बजाय उनका संरक्षण व संवर्धन कर सके।

मंगल आर्थिक संरचना का प्रस्ताव

हमें एक ऐसी प्रणाली का विकास करना चाहिए जिससे वस्तुओं का स्वस्थ उपभोग और प्रसन्नतापूर्वक उत्पादन हो सके। भारत के लिए एक ऐसी प्रणाली की मोटी रूपरेखा इस प्रकार हो सकती है-

- मंगल दृष्टिकोण का मानना है कि पूंजीवादी एवं साम्यवादी प्रणालियों का सही विकल्प धर्म के प्रकाश में लोगों द्वारा संचालित एवं नियंत्रित विकेंद्रित स्वालंबी अर्थतंत्र ही है, किंतु इस विकेंद्रित अर्थतंत्र को पहले की तुलना में अधिक उत्पादक बनाया जाना चहिए।

आर्थिक विकेंद्रीकरण के लिए आवश्यक है कि उत्पादन की इकाइयाँ छोटी रहें। दस से पंद्रह गाँवों को मिलाकर एक इष्टतम सामुदायिक इकाई हो सकती है, जो देश में कृषि-औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करने के लिए कुशलता से काम कर सकेगी और इसे स्वावलंबी ग्राम समुदाय के रूप में भी स्थापित किया जा सकेगा। यह रचना स्थानीय पहल, कौशल और उद्यम का उपयोग करने के पर्याप्त अवसर प्रदान कर सकेगी। इस प्रकार भारत के गाँवों को स्वशासित इकाइयों के रूप में पुनर्गठित एवं पुनर्जीवित कर भारत के क्षतिग्रस्त आर्थिक-राजनीतिक तंत्र के पुनर्गठन की आवश्यकता है।

मंगल प्रणाली एकात्म दृष्टि की होने

मंगल दृष्टिकोण सरकार आश्रित अथवा बाजार आश्रित अर्थव्यवस्था में विश्वास नहीं करता। यह तो जनाश्रित अर्थव्यवस्था अथवा जन-भागीदारी के माध्यम से विकास में विश्वास करता है। सरकार तो जनता के अभियान में सहयोग करने की भूमिका अदा करे। अतः वैज्ञानिकों, तकनीशियनों, प्रशासकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, समाज-वैज्ञानिकों, संपन्न समाज सेवियों, ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के प्राथमिक एवं द्वितीय उत्पादकों को संगठित कर देश के विकास के काम में लगाने की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है।

के कारण यह कृषि और उद्योग के बारे में 'यह अथवा वह' की नीति को ठीक नहीं मानती। यह तो अर्थव्यवस्था के कृषि, सेवा एवं औद्योगिक क्षेत्रों के बीच पूरकता एवं पारस्परिक सहयोग में विश्वास रखती है, किंतु यह सब संबंधों को अपने ढ़ंग से परिभाषित करती है जो वर्तमान संबंधों के प्रारूप से सर्वथा भिन्न हैं। इसके अनुसार कृषि को अर्थव्यवस्था का प्रमुख एवं आधारभूत क्रियाकलाप माना जाना चाहिए। प्राथमिक क्रियाकलाप के चारों ओर कृषि आधारित उद्योगों एवं आवश्यक कुटीर व लघु उद्योगों का गठन किया जाना चाहिए। इस समूह-शृंखला के चारों ओर ऐसे भारी व बड़े उद्योगों की स्थापना की जानी चाहिए जो प्रथम एवं द्वितीय समूहों की सहायता के लिए आवश्यक हों। भारत की विशाल अर्थव्यवस्था की विभिन्न समस्याओं का समाधान कर उसे शीघ्रता से प्रगति पथ पर अग्रसर करने की दृष्टि से आज सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका लघु उद्योगों की है। रोजगार वृद्धि, आय व धन के वितरण में समुचित समानता बनाए रखने, भारत की विशाल श्रमशक्ति, स्थानीय संसाधनों व कौशल का सर्वोत्तम

उपयोग करने, औद्योगिक विकेंद्रीकरण तथा निर्यात बाजार के लिए विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन करने आदि अनेक दृष्टियों से भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्योगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका व स्थान है, किंतु आज भारत के लघुउद्योग क्षेत्र को वित्तीय संसाधनों, समय एवं समुचित कीमत पर कच्चे माल की उपलब्धता, उचित दर पर पर्याप्त बिजली न मिल पाना, उत्पादन की बिक्री, सरकारी संरक्षण का अभाव व घोर उपेक्षा, बड़ी कंपनियों एवं विदेशी फर्मों की प्रतियोगिता आदि अनेक समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। इस ओर तुरंत ध्यान देकर भारत के लघु क्षेत्र को सशक्त व समर्थ बनाया जाना चाहिए।

- परिवार संस्था को सच्चे अर्थों में भारतीय भावनाओं के अनुरूप पुनर्स्थापित किया जाना चाहिए। परिवार एक सामाजिक इकाई के साथ-साथ आर्थिक इकाई के रूप में भी क्रियाशील रहे। हमें प्रत्येक स्तर पर परिवार भावना का जागरण करने का प्रयास करना चाहिए।
- मंगल दृष्टिकोण सरकार आश्रित अथवा बाजार आश्रित अर्थव्यवस्था में विश्वास नहीं करता। यह तो जनाश्रित अर्थव्यवस्था अथवा जन-भागीदारी के माध्यम से विकास में विश्वास करता है। सरकार तो जनता के अभियान में सहयोग करने की भूमिका अदा करे। अतः वैज्ञानिकों, तकनीशियनों, प्रशासकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, समाज-वैज्ञानिकों, संपन्न समाज सेवियों, ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के प्राथमिक एवं द्वितीयक उत्पादकों को संगठित कर देश के विकास के काम में लगाने की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। इस प्रकार हम जनोन्मुखी सामाजिक-आर्थिक प्रणाली की स्थापना करना चाहते हैं।

आर्थिक विकेंद्रीकरण के लिए आवश्यक है कि उत्पादन की इकाइयाँ छोटी रहें। दस से पंद्रह गाँवों को मिलाकर एक इष्टतम सामुदायिक इकाई हो सकती है, जो देश में कृषि-औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करने के लिए कुशलता से काम कर सकेगी और इसे स्वावलंबी ग्राम समुदाय के रूप में भी स्थापित किया जा सकेगा। यह रचना स्थानीय पहल, कौशल और उद्यम का उपयोग करने के पर्याप्त अवसर प्रदान कर सकेगी। इस प्रकार भारत के गाँवों को स्वशासित इकाइयों के रूप में पुनर्गठित एवं पुनर्जीवित कर भारत के क्षतिग्रस्त आर्थिक-राजनीतिक तंत्र के पुनर्गठन की आवश्यकता है।

अंत में, मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूँ कि यदि हम मंगल दृष्टिकोण के अनुसार समाज का पुनर्गठन करना चाहते हैं तो दो बातें आवश्यक हैं- एक आत्मविश्वास और प्रगति की तीव्र इच्छा और दूसरी राष्ट्रीय हितों के लिए समर्पित नैतिक नेतृत्व। हम एक ऐसी मंगलकारी सामाजिक-आर्थिक संरचना का निर्माण करना चाहते हैं जो पोषणक्षम अर्थतंत्र, धारणक्षम तकनॉलॉजी एवं संस्कारक्षम समाजतंत्र की दिशा में काम कर सके।

-लेखक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एवं चिंतक हैं।

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 22

वर्णों की शास्त्रीय चर्चा उपनिषदों के काल से है। छांदोग्य उपनिषद् वर्णों का संबंध ब्रह्मांड रचना की देवशक्तियों से जोड़ता है (2.22.3)। माण्डूक्योपनिषद् में 'ओमित्येदक्षरमिदमंसर्वं' (ॐकार अक्षर ही सब कुछ है) बताया गया है और कठोपनिषद् में 'एतेद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म'(यह अक्षर ही ब्रह्म है) बताया गया है। ॐकार सभी बीजों का बीज है। यह सभी वर्णों के उत्पत्ति की बीज योनी है। भाषा समझने से पहले वर्णों का अर्थज्ञान आवश्यक है, क्योंकि भाषा में वर्ण रूपसत्ताएँ हैं वे पदों की इकाइयाँ हैं और उनके अपने स्वतंत्र अर्थ भी हैं। देवनागरी लिपि के वर्णों का आधार दर्शन है। अतः भाषा और वाक्य रचना के मौलिक ध्वनि रूपों और अर्थों को समझने के लिए वर्णों की रचना, उनके रूप-प्रतिरूप एवं उनकी रचना के वास्तुतत्त्व को समझना होगा। भाषा के समान वर्ण भी सार्थक हैं। महर्षि पतंजलि ने अपने भाष्य में 'अर्थवन्तो वर्णाः' कहा है। वर्णों के इसी प्रतीकात्मक आधार पर बीजाक्षरों व तंत्रदर्शन का विकास हुआ है। भाषा दर्शन के महत्त्व को रेखांकित करता डॉ. सुरेंद्र भटनागर का यह लेख।

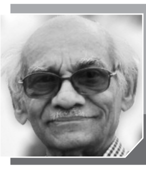

डॉ. सुरेंद्र भटनागर

भाषा में वर्ण शिक्षादर्शन की उपेक्षा क्यों?

भारतीय भाषा दर्शन के अनुसार सृष्टि की स्थिति और गति का कारण चिद्‌बिंदु का स्पंदन है। यह चिद्‌बिंदु ही सृष्टि का बीज है, जो शिव-शक्ति सामरस्य का परिणाम है। प्रो. टी.एन.पी. महादेवन (2001), जॉन वुडरफ की पुस्तक 'दी गारलेंड ऑफ लेटर्स' की भूमिका में लिखते हैं कि इस स्पंदन के परिणाम स्वरूप ध्वनि, अर्थ और प्रत्यय इन तीन स्थितियों का जन्म होता है जो सृष्टि की कारिकाएँ हैं। चिद्‌बिंदु के ऊपर सत्ता निष्कल और निष्क्रिय होती है और चिद्‌बिंदु से ही उसका कलन प्रारम्भ होता है, जो सृष्टि है।

वर्ण ध्वनिरूप है और भाषा दर्शन इन ध्वनिरूपों के साथ ही अर्थ की भी उत्पत्ति मानकर चलता है। ऋक्तंत्र, भाषा दर्शन का प्राचीनतम्‌ ग्रंथ है। वह संपूर्ण अक्षर समाम्नाय की उत्पत्ति के संबंध में लिखता है-

''इदमक्षरं छन्दोवर्णशः समनुक्रान्तं यथाचार्या ऊचुः'' (ऋक्तंत्र 46)

इससे पता चलता है कि भारत में भाषा के विकास के प्रारंभ में ही आचार्य शब्द और वर्णों का पृथक अध्ययन करते थे। वे इन दोनों को मिलाकर ब्रह्म राशि कहते थे- इति च ब्रह्मराशिः। महाभाष्य में भी अक्षर समाम्नाय और वाक्‌ समाम्नाय, इनका पृथक अध्ययन किया जाता था (महाभाष्य आ.2)। किंतु आज स्थिति यह है कि वर्ण समाम्नाय का अध्ययन एक दर्शन के रूप में शालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक कहीं भी नहीं किया जाता।

वर्णों के जो एकाक्षरी कोष हैं, उनमें भी अर्थों की एकता नहीं है। यह सब तब है, जब हम वर्णमाला को मातृका के रूप में पूजते हैं। मातृका, जो सृष्टि का मातृकूट है और

भारतीय ब्रह्मांड विज्ञान का आधार है।

भाषा विषय पर मैं स्वतंत्र रूप से लिखता, पर उसके पहले वर्ण शिक्षा दर्शन पर लिखना, मुझे अधिक उचित लगा। यह विषय लंबे समय से भाषा शिक्षा में उपेक्षित रहा है। भाषा जिन प्रत्ययों से मिलकर बनती है- वे वर्ण हैं। वर्ण पदों की इकाइयाँ हैं और पद वाक्यों की। भाषाविदों में यह सामान्य सोच है कि मनुष्य की प्रारंभिक भाषा एकाक्षरी ध्वनियों से बनी थी (पं. रघुनंदन शर्मा, 2011)। 'अक्षर समाम्नाय' भाषा का प्रारंभिक बीज कोश था।

भारत में भाषा के विकास के प्रारंभ में ही आचार्य शब्द और वर्णों का पृथक अध्ययन करते थे। वे इन दोनों को मिलाकार ब्रह्म राशि कहते थे- इति च ब्रह्मराशिः। महाभाष्य में भी अक्षर समाम्नाय और वाक् समाम्नाय, इनका पृथक अध्ययन किया जाता था (महाभाष्य आ.2)। किंतु आज स्थिति यह है कि वर्ण समाम्नाय का अध्ययन एक दर्शन के रूप में शालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक कहीं भी नहीं किया जाता।

सृजन की प्रक्रिया

भारत में सृजन की प्रक्रिया ईश्वरीय स्वतंत्र इच्छाशक्ति का परिणाम माना गया है। अभिनवगुप्त (975-1025 ईस्वी) इच्छा को ही ज्ञान और उसी से उत्पन्न क्रिया को सृजन का कारण मानते हैं। सृजन की यह शक्ति चिद्-रूप और विकल्प तथा कल्पनामूलक है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया के सामरस्य और परामर्श से ही सृष्टि की उद्भावना संभावित मानी गई है। प्रकाशरूप यह शक्ति स्वतंत्र है और चित्र-विचित्र नाना रूपों में भासती है। वाक्-जाल के किसी भी आडंबर से इसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

स्वतंत्र इति तस्येच्छा शक्तिः स्वातन्त्र्य संज्ञिता
(मालिनीविजयवार्तिकम् 1/27)

इसका अर्थ है कि सृष्टि रचना या सर्जन की कोई भी क्रिया किसी भी पूर्व विचार अथवा संस्कार से बाधित न होकर एक पूर्ण रूप से स्वतंत्र एवं आत्मसंवेदित घटना होती है। आधुनिक भौतिक विज्ञान भी अपने विकास में इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि सृष्टि का आरंभ अपने मौलिक

भारत में सृजन की प्रक्रिया ईश्वरीय स्वतंत्र इच्छाशक्ति का परिणाम माना गया है। अभिनवगुप्त (975-1025 ईस्वी) इच्छा को ही ज्ञान और उसी से उत्पन्न क्रिया को सृजन का कारण मानते हैं। सृजन की यह शक्ति चिद्-रूप और विकल्प तथा कल्पनामूलक है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया के सामरस्य और परामर्श से ही सृष्टि की उद्भावना संभावित मानी गई है। प्रकाशरूप यह शक्ति स्वतंत्र है और चित्र-विचित्र नाना रूपों में भासती है। वाक्-जाल के किसी भी आडंबर से इसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

रूप में एक पूर्णतः आकस्मिक और किसी भी प्रकार के पूर्व निर्धारित नियमों से बाधित नहीं है। सृष्टि की घटना संभावनाओं की बीच का अनिश्चित परिणाम है, जिसका पहले से कोई काल-कारण निर्धारित नहीं किया जा सकता। बसंत पोद्दार (2000) लिखते हैं कि आधारकणों पर आधारित विश्व का गठन आभासमात्र है। तरंग रूप है। पर यह भी परम नहीं है। इस जगत् में केवल परमाणुओं के गठन से रचित विश्व ही स्थूलरूप से वास्तविक है और नियमों से नियमित है। सन् 1931, ब्रह्मांड विज्ञान के लिए एक महत्त्वपूर्ण वर्ष था। आइंसटीन का दृढ़ विश्वास था, कि ब्रह्मांड स्थिर और नियम नियत है तथा उसकी संपूर्ण रचनाओं को गणितीय सूत्रों से समझा जा सकता है। परंतु क्वांटम भौतिकी के नियमों ने इस स्थिति को उलट दिया और विज्ञान ने स्वीकार किया कि कणों और प्रति परमाणुओं के सूक्ष्मतम् कण, पूर्वनिश्चित नियमों के अनुसार व्यवहार नहीं करते, न उनकी गति के संबंध में पहले से ही कोई भविष्यवाणी की जा सकती है। वह कण और तरंग दोनों ही रूप में होते हैं और वह कब किस रूप में होंगे यह केवल संभावनाओं में ही जाना जा सकता है। वे अपने व्यवहार में स्वतंत्र हैं। किंतु आइंस्टीन ने इस धारणा को स्वीकार नहीं किया, उसने कहा - मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता कि संसार की रचना में ईश्वर जुआ खेलता है। किंतु आगे भविष्य ने आइंस्टीन को गलत सिद्ध किया और आज क्वांटम भौतिकी में हायज़नवर्ग का अन्सर्टेनिटी प्रिंसपल एक स्थापित सत्य बन चुका है।

ध्यान के अनुभवों को भी सामान्य प्रचलित भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता, इसके लिए ऋषियों ने प्रतीकों और संकेतों की भाषा का चयन किया। ध्यान के अनुभव भी अलग-अलग होते हैं और इसीलिए उनके प्रतीकों की भी इतनी विविधता पाई जाती है। संस्कृत देवभाषा के रूप में जानी जाती है और उसके वर्ण भी ध्वनिसंकेत हैं और प्रतीकात्मक हैं। यह स्थिति अभिनवगुप्त द्वारा एक हजार ईस्वी पूर्व दर्शाए गए इस सत्य को दुहराती है कि संसार की नियति ईश्वर की 'स्वतंत्र इच्छाशक्ति' का परिणाम है और इसके इस स्वातंत्र्य को किसी भी प्रकार के पूर्व निर्धारित नियमों के द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता। तंत्र में यह स्थिति यदृच्छया कहलाती है।

वर्ण प्रश्न

भाषा में वर्ण ध्वनिरूप रचनाएँ हैं और इस रूप में ही उनको समझना आवश्यक है। ध्वनियाँ आत्मस्फूर्त होती हैं, उनके भाषाओं में प्रयोग का भी कोई बौद्धिक आधार नहीं होता। उनका भी निर्माण मानवीय स्वतंत्र चेतना का परिणाम है। इन्हीं ध्वनियों से वर्ण बनते हैं। भारत में संस्कृत वर्णमाला ऋषियों द्वारा उनकी ध्यान चेतना से प्रणीत है। ध्यान के विभिन्न स्तरों के अनुभव अभिव्यक्त करने के लिए ध्वनि प्रतीकों की आवश्यकता होती थी। इसी की पूर्ति हेतु भाषा-ऋषियों ने इन ध्वनिसंकेतों के अर्थ निश्चित किए। ध्वनि संकेत

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 26

या ध्वनिरूप ही वर्ण हैं। प्रारंभ में वर्णों के आधार पर जो भाषा बनी, वह एकाक्षरी भाषा थी। क्रमशः जब भाषा चिंतन बढ़ता गया, तो ऋषियों ने वर्णों से धातुएँ और धातुओं से पदों का निर्माण किया। यह धातु एवं पद भी अर्थात्मक थे। यह अलग बात है कि भाषा के लोकप्रयोग से इन वर्णों का विरूपित अर्थविस्तार होता गया और उनके मूल अर्थ अपरोक्ष हो गए। किंतु ये मूल अर्थ आज भी तंत्र में बीजाक्षरों के रूप में हैं और निरुक्त और निघंटुओं में भी इनको देखा समझा जा सकता है, ऐसा दुनिया की अन्य भाषाओं में नहीं होता। आश्चर्य है कि हमारे देश के विद्यालयों में वर्णमाला पढ़ाई-लिखाई तो जा रही है, उसके उच्चारण पर भी विद्यालयीन शिक्षा में जोर दिया जाता है पर इन ध्वनिरूपों (वर्णों) के परस्पर उत्पत्तिमूलक सहसंबंध क्या हैं, इनकी चर्चा कहीं नहीं होती। ये किसी भी स्तर पर पाठ्यक्रमों में पढ़ाए नहीं जाते।

वर्ण ब्रह्मांड रचना के बीज

वर्ण लेखन की इकाइयाँ मात्र नहीं हैं, वे ब्रह्मांड की तंत्ररचना एवं उत्पत्ति के अवयव भी हैं, इसलिए उनका अध्ययन इस संदर्भ में भी किया जाना चाहिए।

छांदोग्य उपनिषद् वर्णों का संबंध ब्रह्मांड रचना की देवशक्तियों से जोड़ता है।

सर्वे स्वरा इन्द्रस्यात्मनः
सर्व उष्माणः प्रजापतेरात्मनः,
सर्वे स्पर्शा मृत्योरात्मानस्तम्

(छा.उ. 2.22.3)

आदिशंकराचार्य इसका अर्थ करते हैं कि अकार आदि संपूर्ण स्वर इंद्र यानी प्राण स्थानीय हैं। 'श, ष, स, ह' आदि समस्त ऊष्म वर्ण प्राजापत्य हैं और क वर्ग से लेकर प वर्ग तक संपूर्ण स्पर्शी वर्ण व्यंजन हैं और मृत्युलोक के प्रत्यय हैं। ऐतरेय आरण्यक में भी इसी बात को दोहराया है।

पृथिव्या रूपं स्पर्शा अन्तरिक्षस्योष्माणः दिवः स्वराः।

(ऐ आ. पृ. 256)।

इसका अर्थ है कि भाषा के सभी व्यंजन पृथिवी के रूप प्रत्यय हैं। पार्थिव हैं। ऊष्म, अंतरिक्ष के वर्ण हैं उसी प्रकार स्वर द्यु-लोक के। ऋक्-प्रातिशाख्य के अनुसार ऊष्म वर्ण

वर्णोत्तपत्ति

वर्णों का वंशवृक्ष

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 27

वायुप्रधान होते हैं।

आचार्य अभिनवगुप्त कृत मालिनिविजयवार्तिकम् के अनुसार हकार वर्ण से सभी व्यंजनों की उत्पत्ति मानी गई है और अकार से सभी स्वरों की। किंतु बीज और उत्पत्ति से संबंधित बीजाक्षरों का ज्ञान भाषा शिक्षण में कहीं दिखाई नहीं देता।

गोपीनाथ कविराज (1987) अपनी पुस्तक 'कविराज प्रतिभा' में अकार से लेकर विसर्ग तक स्वरवर्णों को चेतना की सुषुप्ति का द्योतक मानते हैं। स्वर वर्ण प्राणात्मक हैं और ककार से लेकर मकार तक 25 स्पर्शी और मृत वर्ण जाग्रत अवस्था के प्रतीक हैं। ये 25 व्यंजन ही पंचभौतिक सृष्टि के जनक हैं।

ओमित्येदक्षरमुपासीत

ॐ कार सभी बीजों का बीज है। किंतु भाषा शिक्षा में कहीं भी, वर्णों की उत्पत्ति ॐ कार से किस प्रकार हुई, यह नहीं पढ़ाया जाता है। संक्षेप में भाषा की शिक्षा, व्याकरण तक ही सीमित रह गई है।

भाषा समझने से पहले वर्णों का अर्थज्ञान आवश्यक है। यह भी कि वैदिक ऐन्द्र सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक वर्ण का प्रतिवर्ण होता है और या तो यह प्रतिवर्ण, वर्ण के अर्थ का उल्टा अर्थ देता है अथवा वह उसका गुण विस्तार करता है। डॉ. भगवानसिंह (2006) लिखते हैं कि एकाक्षरी शब्दों की संख्या दुनिया में किसी भाषा में इतनी न होगी जितनी भारतीय भाषाओं में। एकाक्षरी ध्वनियों का भाषा निर्माण में वही महत्त्व है जो जीन प्रलेखों का हमारी शरीर रचना में। उनका यह कथन महत्त्वपूर्ण है. कि इनके

माध्यम से हम भाषा की प्रकृति की अमूर्त संकल्पनाओं के अनेक चरणों को समझ सकते हैं। वर्णमाला हम अकार से रटकर मकार पर समाप्त कर देते हैं। पर भाषा में अनुस्वार और विसर्ग क्या हैं, क्यों हैं- हमें नहीं पढ़ाया जाता।

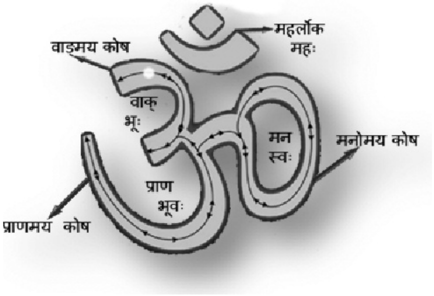

मैं नहीं समझता कि ॐ कार की वर्ण रचना को समझे बिना वर्ण समीक्षा का कोई प्रयत्न पूरा हो सकता है। ॐ कार अक्षरवाक् है। वह सभी वर्णों के उत्पत्ति की बीजयोनि है। अ, इ, उ - इन तीनों मूल बीज स्वरों से प्रणव की रचना होती है। अकार असत्वाक् है, अमूर्तवाक् है, अक्षर वाक् है तो उकार उन्मेष और इकार गतिवाचक वर्ण। इस प्रकार स्थिति, गति और उन्मेष-यह तीनों बीजगुण, जो सृष्टि के कारण हैं, ॐ कार की रचना में पाए जाते हैं। 'मांडूक्य उपनिषद्'में

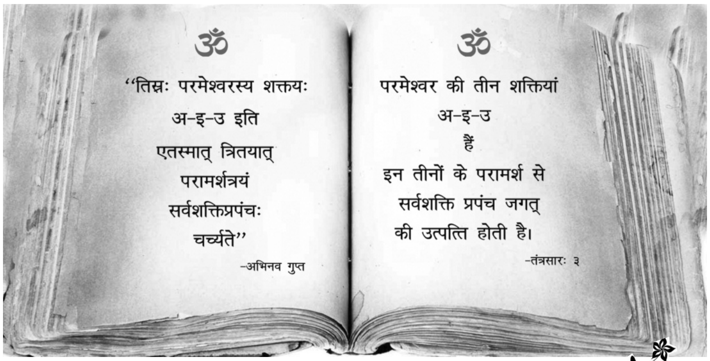

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 28

चेतना की तीनों स्थितियाँ- जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ॐ कार की रचना में पाए जाते हैं। भूः, भूवः, स्वः- ये सृष्टि की तीन गतियाँ हैं। जिन्हें हम गायत्री कहते हैं, यही सृष्टि के त्रिलोक हैं। गायत्री मंत्र के अंग हैं। चेतना का चौथा पद, जिसे तुरीय पद कहते हैं, महः है। इस महर्लोक की रचना चंद्र और बिंदु को मिलाकर की जाती है। यह चौथा पद स्वतंत्र चेतना का है, जहां भूः(देह), भुवः (प्राण), स्वः (मन) मिलकर त्रिलोक की रचना करते हैं। ये तीनों लोक ऊर्जा के परस्पर स्वतंत्र प्रवाह पर आधारित हैं। इसके विपरीत चौथा पद महर्लोक है जहाँ कारक सत्ता तुरीय चेतना है। गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि-

मम् योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिनगर्भ दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ।।
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ।।

भगवद्गीता 14.3,4

जिसका अर्थ है कि महर्लोक या चेतना का तुरीय पद सृष्टि की कारक और कारण योनि है और इसी में ईश्वर अपना बीजवपन कर सृष्टि का निर्माण करता है।

अयोगवाह

अयोगवाहों का दार्शनिक अर्थ क्या है ? व्याकरण में इनकी गणना स्वरों से अलग होती है। संस्कृत भाषा में अम् प्राणात्म ध्वनि है। छान्दोग्य उपनिषद् कहता है-अम् प्राणस्य नाम। बिना बिंदु (अम्) लगाए अक्षर बीजाक्षर नहीं बनता। अकार का प्रतिअक्षर हकार है। अकार अल्पप्राण है हकार महाप्राण। दोनों के मिलने और बिंदु के आरोह से अहंकार बनता है जो सृष्टि का बीजकारण है। अकार सारे स्वरबीजों का जन्मदाता है और हकार व्यंजनों का। दोनों मिलकर सृष्टि के संपूर्ण बीजाक्षरों को जन्म देते हैं। लेकिन यह सब पढ़ना हमारे पाठ्यक्रमों के बाहर है। भाषा में वर्ण रूपसत्ताएं हैं। वे पदों की इकाइयाँ हैं और उनके अपने स्वतंत्र अर्थ भी हैं। किंतु भाषा पढ़ाते समय हम केवल वर्णों को रटाते हैं। हम नहीं जानते कि स्वर, स्वर क्यों हैं। व्यंजन क्या हैं। अन्तःस्थ वर्णों में य, र, ल, व क्यों साथ हैं, क्या वे सब अर्थविहीन ध्वनियाँ हैं। रटने की प्रशस्ति में तो विद्वानों ने यहाँ तक कह डाला ''कौमुदी कण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः। यदि कौमुदी अकण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः।'' तो इस प्रकार कौमुदी तो कण्ठस्थ हो गई, पर वह न दिल में पहुँची न दिमाग में। एक विज्ञान की विकृति कहाँ तक जा सकती है यह इसका एक प्रमाण है। वैयाकरण पतंजलि इस विषय में पूरी तरह स्पष्ट हैं। वे लिखते हैं-

अर्थवन्तो वर्णाः।

धातुप्रातिपादिकप्रत्ययनिपातानामेक वर्णानामर्थदर्शनात्।

अर्थात् वर्ण अर्थ वाले हैं। धातु, निपात, नाम, और प्रत्यय का प्रत्येक वर्ण अर्थवान् होता है। पर यह विचार पश्चिमी भाषा वैज्ञानिकों का नहीं था। मैक्समूलर का भी नहीं।

मैं बुशमैन जाति की भाषा ध्वनियों के अर्थ समझने की कोशिश कर रहा था। बुशमैन सहारा के रेगिस्तान में रहने

जैसे ब्रह्मांड की रचना जानने के लिए हमें कणों और उपकणों से लेकर क्वार्क्स के संस्तरों तक जाना पड़ता है, तब जाकर हम कणों की आंतरिक संरचना को समझ पाते हैं, हमें उसी प्रकार भाषा और वाक्यरचना के मौलिक ध्वनिरूपों और अर्थों को समझने के लिए वर्णों की रचना, उनके रूप-प्रतिरूप एवं उनकी रचना के वास्तुतत्त्व को समझना होगा।

वर्णों का अर्थ जानना इसलिए आवश्यक था क्योंकि वर्ण न केवल भाषा की इकाईयाँ थे अपितु बिंदु के आरोह से अपने बीजाक्षर रूप में वे मंत्ररचना के भी आधार थे। आगे चलकर भाषा रटंत हो गई, कौमुदी का कंठस्थ होना भाषा वैज्ञानिक की एकमात्र ज्ञान क्षमता बन गई। वर्णों के रूप में इस प्रकार भाषिक प्रत्ययों का अर्थ जानना अनावश्यक हो गया। मंत्र भी रटने और फूकने तक सीमित हो गए और भाषा की तद्भवता ने उसे व्यापक तो बनाया पर हम उसके मौलिक अर्थ खो बैठे।

वाली प्राचीनतम मनुष्य की जाति है। हमसे सबसे निकट है। इनकी भाषा को देखा तो पाया इनकी सभी ध्वनियों के सांकेतिक अर्थ हैं। जैसे टक्-टक् का अर्थ जानवर का आगे हांकना है। च्-च् का अर्थ, अरे बुरा हुआ, है। लगभग यही ध्वनियाँ इन्हीं अर्थों में हम भारत में आज भी प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार बालक पुचकारने के लिए दोनों ओठ मिलाकर जो ध्वनि हम निकालते हैं, वह सब जगह एक है। उनका 'ऋ' वर्ण का उच्चारण कंपन-मूलक है जबकि हमने उसका 'रि' रूप बनाकर उसकी ऊष्मता और मूर्धन्यता समाप्त कर दी है। मेरा सोच है कि जैसे ब्रह्मांड की रचना जानने के लिए हमें कणों और उपकणों से लेकर क्वार्क्स के संस्तरों तक जाना पड़ता है, तब जाकर हम कणों की आंतरिक संरचना को समझ पाते हैं, हमें उसी प्रकार भाषा और वाक्यरचना के मौलिक ध्वनिरूपों और अर्थों को समझने के लिए वर्णों की रचना, उनके रूप-प्रतिरूप एवं उनकी रचना के वास्तुतत्त्व को समझना होगा। मेरा स्पष्ट सोच है कि भाषा रचना का रूप स्थापत्य यथावत बना रहे, वह न बिगड़े, इसके लिए हमने व्याकरण के द्वारा वैदिक वाक् के उच्चारण एवं लेखन के रूप को तो बचा लिया,

किंतु उतना ही अध्ययन शायद इन वर्णों के अर्थों को सुरक्षित रखने के लिए नहीं किया। इसलिए व्याकरण द्वारा संरक्षित आर्यवाक् का वाचिक रूप तो सुरक्षित रहा- पर वर्ण प्रत्ययों के अर्थों का सुनिश्चित न कर पाने से हम इन भाषिक प्रत्ययों का ज्ञा-करण खो बैठे।

हमें वर्णों का अर्थ जानना आवश्यक क्यों?

वर्णों का अर्थ जानना इसलिए आवश्यक था क्योंकि वर्ण न केवल भाषा की इकाईयाँ थे अपितु बिंदु के आरोह से अपने बीजाक्षर रूप में वे मंत्ररचना के भी आधार थे। आगे चलकर भाषा रटंत हो गई, कौमुदी का कंठस्थ होना भाषा वैज्ञानिक की एकमात्र ज्ञान क्षमता बन गई। वर्णों के रूप में इस प्रकार भाषिक प्रत्ययों का अर्थ जानना अनावश्यक हो गया। मंत्र भी रटने और फूकने तक सीमित हो गए और भाषा की तद्भवता ने उसे व्यापक तो बनाया पर हम उसके मौलिक अर्थ खो बैठे।

अक्षर और बीजाक्षर

वर्ण जिज्ञासा, भाषा के वर्णों को जानना है। अगर

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 30

वर्ण, भाषा की अर्थहीन ध्वनियाँ और मात्र अचेतन अवयव हैं, तब तो नहीं किंतु यदि भाषा के समान वर्ण भी सार्थक हैं, तब उन्हें समझना आवश्यक हो जाता है। महर्षि पतंजलि अपने भाष्य में लिखते हैं -अर्थवन्तो वर्णाः। भारत में वर्णों के इसी प्रतीकात्मक आधार पर तंत्रदर्शन का विकास हुआ। आचार्य अभिनवगुप्त ने, जो कश्मीर शैवदर्शन के आचार्य थे, आज से 1000 वर्ष पूर्व अपने ग्रंथ तंत्रसार में लिखा है । तिस्त्रः परमेश्वरस्य शक्तयः अ-इ-उ इति। परमेश्वर की तीन शक्तियाँ हैं और इन तीनों के परस्पर परामर्श से सृष्टि के शक्तिप्रपंच का जन्म होता है। यह सृष्टि प्रपंच कैसे जन्म लेता है इसके लिए तैत्तिरीय उपनिषद् के सूत्र इस प्रकार हैं-

आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः अग्नेरापो,

अदभ्य पृथिवीः पृथिवी वनस्पतयः

अर्थात् -आकाश से वायु उत्पन्न हुई। तंत्रशास्त्रों में आकाश का बीजाक्षर 'हं' है।

वर्णाक्षरों पर प्राण बिंदुओं से आरोहण से बीजाक्षर बनते हैं और बीजाक्षरों से मातृका। मातृका अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति का कूट विन्यास। मदर कोड ऑफ क्रिएशन।

हम वर्णमाला की ही मातृका के रूप में पूजा करते हैं। यद्यपि सभी वर्णों में स्वरों का प्रवेश है-किंतु स्वर कम्प नहीं है - जो प्राण के गतिशील प्रत्यय के लिए आवश्यक है। उदाहरण के लिए अकार स्वर प्रत्यय अं-कार, स्वर का कंपित गतिशील रूप है। किसी भी बीजाक्षर में केवल प्राणात्मक स्वर होना पर्याप्त नहीं है- जो प्रत्येक अक्षर में अन्तर्यामी भाव में होता ही है। उस अक्षर में स्वर कंपन होना चाहिए- यह कंप या 'वाइब्रेशन' सृष्टि की गतिचालक शक्ति है। अक्षर जब बीजाक्षर बनता है- तो हम स्वरकंप की इसी गति का अक्षर पर आरोह करते हैं।

यथा-

क = क् + अ - (अक्षर)

कं = क् +अ +अम् (बीजाक्षर)

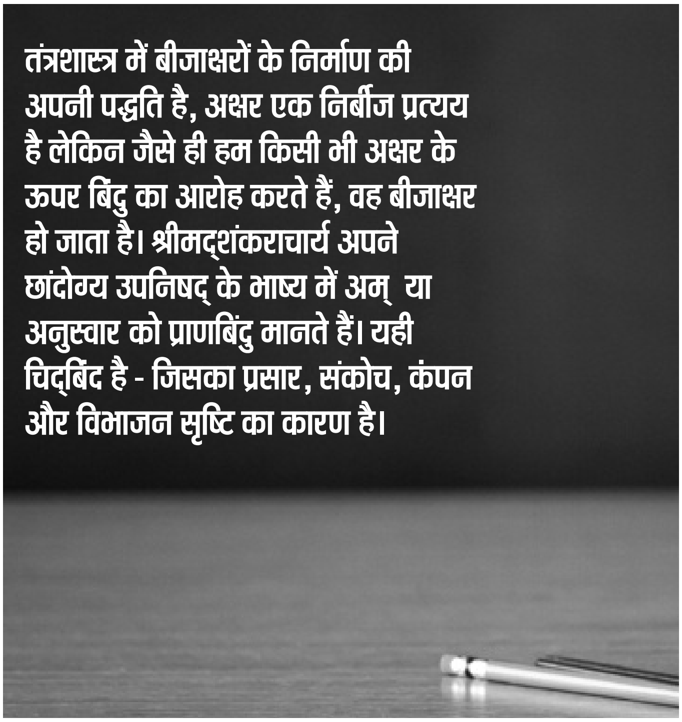

इसी स्वरकम्प को ही तंत्रशास्त्र में चिद्बिंदु कहा गया है। इस चिद्बिंद में ही सृष्टि के निर्माण का रहस्य है। बिंदु के आरोह के बाद निर्बीज अक्षर-सजीव बीजाक्षर हो जाता है और यहाँ यह कहा जा सकता है कि जब प्रत्येक अक्षर में अकार अथवा हकार के रूप में कोई न कोई स्वर है ही तो फिर बीजाक्षर की रचना में बिंदु की आवश्यकता क्यों है ? इसका उत्तर यह है कि इन अक्षरों में स्वर का अंतर्प्रवेश उसकी काया का अंग है। जबकि चिद्बिंदु के रूप में 'अनुस्वार' अक्षर के बाहर स्थित होकर अपने कंपन से अक्षर को प्राणवान और सक्रिय बनाता है। 'अनुस्वार' का कंपन स्वर को प्रेरित करता है, उसको एक सजीव प्रत्यय बनाता है और एक अक्षर, बीजाक्षर बनकर सृष्टि रचना का क्रियाशील कारक बन जाता है। तंत्रशास्त्र में बीजाक्षरों के निर्माण की अपनी पद्धति है, अक्षर एक निर्बीज प्रत्यय है लेकिन जैसे ही हम किसी भी अक्षर के ऊपर बिंदु का आरोह करते हैं, वह बीजाक्षर हो

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 31

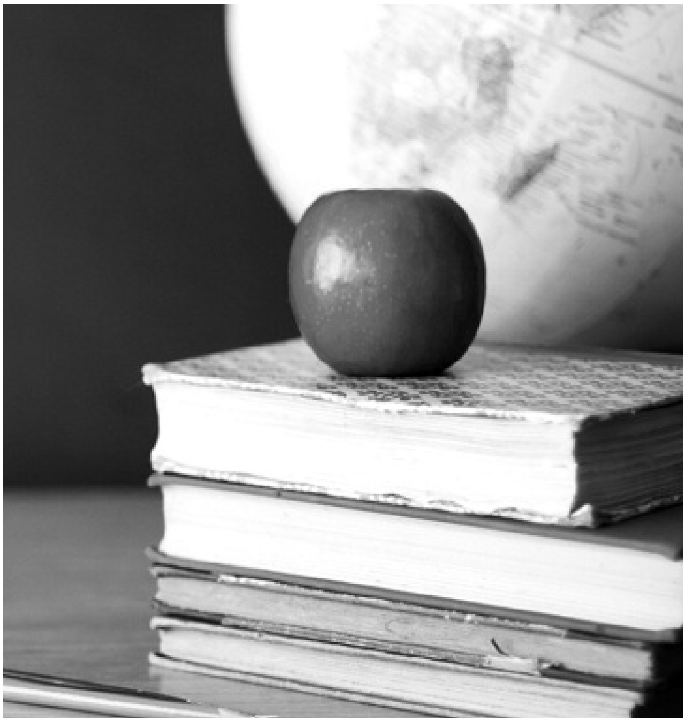

जाता है। श्रीमद्शंकराचार्य अपने छांदोग्य उपनिषद् के भाष्य में अम् या अनुस्वार को प्राणबिंदु मानते हैं। यही चिद्बिंद है - जिसका प्रसार, संकोच, कंपन और विभाजन सृष्टि का कारण है।

'अं' एक गतिशील चिद्बिंदु है। प्राणबिंदु है। किसी भी अक्षर पर 'अं' का आरोह, उस अक्षर को एक गतिशील प्रत्यय बनाता है और वह किसी न किसी तत्त्व का कारण-कारक-करण बन जाता है। यथा-

रं - अग्निबीज

लं - पृथिवी बीज

यं - प्राण बीज इत्यादि

हमें यहाँ यह समझना आवश्यक है कि किसी भी वर्ण के सक्रिय बीज के रूप में रूपांतरण के लिए एक स्पंदित बिंदु का अक्षर रचना से अलग होना आवश्यक है। इसलिए ही व्याकरण में अनुस्वार और विसर्ग की स्वरों में गणना न कर उनको पृथक् से अयोगवाह श्रेणी में रखा जाता है।

स्पंदित अनुस्वार से अकार और अकार से सभी स्वर

स्पंदित विसर्ग (:) से हकार और हकार से उत्पन्न सभी व्यंजन।

अकार और हकार के ऊपर बिंदु के आरोह से अहंकार प्रत्यय का जन्म और अहंकार से संपूर्ण सृष्टि। यही वर्ण-दर्शन का सार-संक्षेप है। इस विषय पर विस्तार से चर्चा मैंने अपनी पुस्तक 'संस्कृत भाषा का वर्ण विज्ञान' में की है, जो अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित है।

लेखक भारतविद्या अध्ययन एवं अनुसंधान केंद्र, अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल, में प्राध्यापक हैं।

संदर्भः-

1. अभिनवगुप्त(1985), मालिनिविजयवार्तिकम्, केशवानंद सागर, वाराणसी।
2. अभिनवगुप्त (1985), तंत्रसार, शक्तिप्रेस, वाराणसी।
3. बसंत पोद्दार (2000), कालयात्रा, इतिहास संकलन समिति, दिल्ली।
4. भगवान सिंह (2006), भारत तब से अब तक, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. छांदोग्य उपनिषद् (संवत् 1993), गीताप्रेस, गोरखपुर।
6. गोपीनाथ कविराज (1987), कविराज प्रतिभा, वाराणसी ।
7. पंडित रघुनंदन शर्मा (2011), वैदिक सम्पत्ति, श्री घूडमल प्रह्लाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, राजस्थान।
8. टी.एन.पी. महादेवन (2001), दी गारलेंड ऑफ लेटर्स, जॉन वुडरफ, गणेश एंड कंपनी, चेन्नई।

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 32

इतिहासकारों के एक वर्ग ने अकबर की महानता के कितने ही गीत गुनगुनाए हों, जनमानस पर अकबर के महान व्यक्तित्व की छवि अंकित करने का कितना ही प्रयास किया हो; पर जब अकबर तथा महाराणा प्रताप के बीच; सन् 1575 से 1586 तक हुए युद्धों का मूल्याँकन किया जाता है तो अकबर की छवि साम्राज्यवादी, कूटनीतिज्ञ शासक की ही बनती है। दूसरी ओर महाराणा प्रताप की छवि स्वाभिमानी, देशभक्त, कुशल यौद्धा तथा आजादी के मतवाले महान वीर की अंकित होती है। इस तथ्य से कोई भी निष्पक्ष इतिहासकार इनकार नहीं कर सकता है।

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 33

राजेंद्र सिंह गहलौत

महानायक वीर शिरोमणि

महाराणा प्रताप की महानता

सन् 1567 में जबकि प्रताप मात्र 27 वर्ष के थे तब अकबर द्वारा चित्तौड़ किले पर आक्रमण करने की योजना ज्ञात होने पर प्रताप के पिता राणा उदय सिंह ने अपने परिवार सहित मेवाड़ के पर्वतीय अंचल में रह कर, किले के बाहर से मुगल सेना पर आक्रमण की रणनीति बनाई। कुछ विश्वस्त सरदारों पर किले की रक्षा का भार सौंप कर राज्य पीपल्या तथा उदयपुर में कुछ समय रहने के बाद पर्वतीय अंचल पर स्थित कुंभलगढ़ को उन्होंने मेवाड़ की राजधानी बनाया तथा 1570 में अकबर की फौज का अच्छी तरह से मुकाबला करने के उद्देश्य से उन्होंने गोगूंदा को मेवाड़ की अस्थायी राजधानी बनायी। 1572 में महाराणा उदय सिंह की मृत्यु के बाद 24 फरवरी, 1572 में महाराणा प्रताप राजगद्दी आसीन हुए। इस बीच प्रबल विरोध के बावजूद आखिरकार अकबर ने चित्तौड़ के किले पर कब्जा कर लिया।

साम्राज्य विस्तारवादी अकबर पूरे भारतवर्ष पर अपना एकच्छत्र राज्य कायम करना चाहता था। ऐसी स्थिति में राजपूतों के स्वतंत्र राज्य उसकी आँखों में खटकने लगे थे। वह येनकेन प्रकारेण, हर हालत में

महाराणा प्रताप की छतरी

राजपूतों के राज्यों को अपने अधीन करना चाहता था, लेकिन वह राजपूतों की वीरता, आन-बान-शान... से भी भलीभाँति परिचित था। अतः उसने पहले कूटनीति की मीठी छुरी से उन्हें हलाल करना चाहा। इसी नीति के तहत सन् 1562 में आमेर (जयपुर) के राजा भारमल की पुत्री से विवाह कर उसने मुगल राजपूत संबंधों का एक नया सिलसिला प्रारंभ करना चाहा तथा भारमल के पुत्र भगवानदास तथा पौत्र मानसिंह अकबर के विशेष कृपापात्र बन गए। मानसिंह को उसने अपना फर्जंद (पुत्र) घोषित किया। लेकिन इन सबके बावजूद उसकी अन्य राजपूतों के सामने दाल ना गली। परंतु चित्तौड़ पतन के बाद राजपूतों का मनोबल गिर गया

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 34

तथा रणथम्बौर, कालिंजर, जोधपुर, बीकानेर एवं जैसलमेर ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। लेकिन इन सबके बावजूद आजादी के मतवाले महाराणा प्रताप ने विशाल साम्राज्यधारक, अत्यंत शक्तिशाली अकबर की अधीनस्थता किसी भी हालत में स्वीकारने से इनकार कर दिया। अकबर ने कूटनीति का सहारा लेते हुए मानसिंह, राजा भगवानदास तथा टोडरमल को क्रमशः संधि प्रस्ताव लेकर महाराणा प्रताप के पास भेजा लेकिन महाराणा प्रताप किसी भी हालत में मुगल बादशाह के सामने घुटने टेकने को राजी न हुए। मानसिंह के साथ तो बहाना बना कर खाना खाने से भी उन्होंने इनकार कर दिया क्योंकि मानसिंह की बुआ का विवाह अकबर के साथ हुआ था जो कि राजपूतों की आन-बान-शान पर बदनुमा धब्बा था।

संधिवार्ता असफल होने के बाद अकबर, मेवाड़ पर आक्रमण कर, महाराणा प्रताप को समाप्त करने की योजना बनाने हेतु सन् 1576 में स्वयं अजमेर आया तथा लगभग एक पखवाड़ा (15 दिन) तक विचार-विमर्श के बाद आमेर के राजा मानसिंह को महाराणा प्रताप के विरुद्ध लड़ाई के लिए जाने वाली सेना का नायक बनाया। मानसिंह को नायक बनाने के पीछे अकबर की राजपूतों को राजपूतों से लड़ने की कूटनीतिक चाल थी। 18 जून, 1576 को मानसिंह के नायकत्व में मुगल सेना और महाराणा प्रताप के बीच जो युद्ध हुआ वह हल्दी घाटी के युद्ध के नाम से इतिहास में जाना जाता है। मेवाड़ की जिस घाटी में यह युद्ध हुआ वहाँ की मिट्टी का रंग हल्दी के रंग की भाँति पीला है। (जिसे कि आज भी देखा जा सकता है) इसी कारण से उस घाटी में मुगलों एवं महाराणा प्रताप के युद्ध का नाम 'हल्दीघाटी का युद्ध' पड़ा। हल्दीघाटी युद्ध का विस्तृत विवरण इतिहास के पन्नों में दर्ज है तथा लगभग सभी इतिहासकारों ने इस युद्ध में महाराणा प्रताप की वीरता को स्वीकार तथा वर्णित किया है। उस युद्ध में महाराणा प्रताप के स्वामिभक्त घोड़े चेतक ने उछाल मार कर मानसिंह के हाथी के मस्तक पर अपने दोनों पैर रख दिए तथा महाराणा प्रताप ने अपने बर्छे से मानसिंह पर वार किया। मानसिंह हौदे में छिप कर बच गया लेकिन महावत मारा गया। हाथी की सूंड पर बंधी तलवार के वार से महाराणा प्रताप के घोड़े चेतक का पिछला पैर कट गया, तब भी स्वामिभक्त घोड़ा चेतक महाराणा प्रताप को युद्ध स्थल हल्दीघाटी से 2 किलोमीटर दूर बलीचा गाँव

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 35

के पास ले आया, वहीं पर चेतक ने प्राण त्यागे। महाराणा प्रताप ने अपने वीर स्वामिभक्त घोड़े की समाधि उस स्थल पर बनवाई तथा उसके पूजन हेतु पुजारी नियुक्त किया जिसे कुछ जमीन दान में दी गई। आज भी उस स्थल पर चेतक घोड़े की समाधि मौजूद है। एक मूक घोड़े के प्रति इस भाँति अपनत्व भरा कृतज्ञता ज्ञापन महान महाराणा प्रताप द्वारा ही संभव था।

मुगल इतिहासकार अलबदायूनी ने अपने लेखन में तथा अबुफजल ने 'अकबरनामा' में इस युद्ध में जगह-जगह महाराणा प्रताप की वीरता का वर्णन किया है। जबकि अलबदायूनी ने जो कि मुगल सेना के साथ था, उस युद्ध का आँखों देखा हाल लिखते हुए एक स्थल पर लिखा है- 'मैंने (अलबदायूनी) आसफ खाँ से पूछा कि हम अपने और शत्रु पक्ष के राजपूतों की पहचान कैसे करेगें?' जबाब में आसफ खाँ ने कहा- 'तुम तो तीर चलाए जाओ चाहे जिस पक्ष के राजपूत मारे जाएँ।' इसलिए हम तीर चलाते रहे भीड़ इतनी थी कि लाशों से रणक्षेत्र छा गया।' उसका यह कथन राजपूतों के प्रति मुगलों के घोर विद्वेष का ही परिचायक नहीं था बल्कि अपने समर्थक राजपूतों से विश्वासघात का भी ज्वलंत उदाहरण था। क्या यही अकबर की महानता थी? जबकि महाराणा प्रताप की सेना में राजपूतों, वैश्यों के अतिरिक्त भील तथा अफगानी सैनिक भी थे। अफगान अपने आप को भारतीय मानते थे तथा अकबर को विदेशी आक्रांता। हल्दीघाटी युद्ध में वीर अफगान हाकिम खाँ तथा सूर के नेतृत्व में एक सेना दल था तथा उसकी सहायता एवं रक्षा हेतु बड़े-बड़े सरदार जैसे सलूंवर के किशनदास, सरदारगढ़ के भीमसिंह, देवगढ़ के साँगा, चित्तौड़ दुर्ग के नेता जयमल के पुत्र, बदनौर के राठौड़ आदि थे। महाराणा प्रताप की यह महानता का परिचायक था कि उन्होंने युद्ध में हर वर्ग को पूरे विश्वास के साथ जिम्मेदारी सौंपी थी तो उसकी सुरक्षा का भी यथासंभव प्रबंध किया था। महाराणा प्रताप ने केवल हिंदू राजाओं से सहयोग नहीं प्राप्त किया था बल्कि उन्होंने मुस्लिम शासकों से भी मित्रता का हाथ बढ़ा कर सक्रिय सहयोग लिया था। जालौर के नवाब ताज खाँ ने महाराणा प्रताप का सहयोग करते हुए मुगल सैनिकों को खासा परेशान किया था।

हल्दीघाटी तथा कुंभलगढ़ युद्ध में पराजय महाराणा प्रताप की पराजय ना थी। महाराणा प्रताप अपनी सैन्य टुकड़ियों के साथ सुरक्षित वहाँ से निकल गए तथा धन-संपदा तथा अपने परिवारों को पहले ही वहाँ से हटा कर सुरक्षित स्थलों पर भेज दिया गया था। चित्तौड़गढ़ के किले की भाँति कुंभलगढ़ के किले में भी मुगलों को कुछ भी हासिल ना हुआ। अकबर के लाख प्रयास के बावजूद महाराणा प्रताप ना तो मारे

अलबदायूनी ने जो कि मुगल सेना के साथ था, उस युद्ध का आँखों देखा हाल लिखते हुए एक स्थल पर लिखा है- 'मैंने (अलबदायूनी) आसफ खाँ से पूछा कि हम अपने और शत्रु पक्ष के राजपूतों की पहचान कैसे करेगें?' जबाब में आसफ खाँ ने कहा- 'तुम तो तीर चलाए जाओ चाहे जिस पक्ष के राजपूत मारे जाएँ।' इसलिए हम तीर चलाते रहे भीड़ इतनी थी कि लाशों से रणक्षेत्र छा गया।' उसका यह कथन राजपूतों के प्रति मुगलों के घोर विद्वेष का ही परिचायक नहीं था बल्कि अपने समर्थक राजपूतों से विश्वासघात का भी ज्वलंत उदाहरण था।

गए और ना ही पकड़े गए। मेवाड़ की पहाड़ियों एवं वनों में रहते हुए भी वे स्वतंत्रता संग्राम क्रांति की ज्वाला निरंतर जलाए हुए थे। छापामार युद्धों से उन्होंने बादशाह को त्रस्त कर दिया, बादशाह द्वारा स्थापित थानों को निरंतर नष्ट करते रहे तथा मेवाड़ की भूमि जो मुगलों के अधीन हो गई थी उस में किसी तरह की कृषि न होने दी। अकबर सात माह तक मेवाड़ की भूमि पर डेरा डाले पड़ा रहा लेकिन मेवाड़ विरोधी अभियान में सफल ना हो सका। अंततः 12 मई, 1577 को वह अपनी राजधानी वापस लौट गया।

अकबर के मेवाड़ छोड़ कर वापस लौटने के बाद महाराणा प्रताप ने पुनः गोगुंदा पर अधिकार कर लिया तथा उदयपुर एवं चित्तौडगढ़ छोड़कर समस्त पहाड़ी क्षेत्र को मुगलों से मुक्त करा लिया। शाहबाज खाँ को अकबर ने तीन बार मेवाड़ भेजा लेकिन महाराणा प्रताप को पकड़ने या मारने में असफल रहा। सन् 1585 में अकबर ने अपने अधीनस्थ राजा जगन्नाथ कछवाहा को महाराणा प्रताप को पकड़ने का आदेश किया लेकिन वह भी असफल रहा। अंततः 1 अक्तूबर, 1585 में महाराणा प्रताप एवं मेवाड़ दमन के संबंध में अकबर ने मन ही मन अपनी पराजय स्वीकार ली तथा महाराणा प्रताप से किसी भी तरह की छेड़छाड़ ना करने का मन बना लिया। 1585 से 1588 के बीच महाराणा प्रताप ने चित्तौड़ और माडलगढ़ दुर्ग के अलावा मेवाड़ प्रदेश के सभी मुगल अधिकृत क्षेत्रों को पुनः अपने अधिकार में कर लिया। मेवाड़ में शांति कायम होने के बाद महाराणा प्रताप ने मेवाड़ क्षेत्र को विकसित किया, उदयपुर नगर को विकसित किया। चावंड में छोटे-छोटे महल बनवाए। चामुंडा माता मंदिर की स्थापना की तथा 1585 से 1615 तक चावंड मेवाड़ की राजधानी रही।

महाराणा प्रताप ने मुगलों से युद्ध के दौरान भी सदैव नैतिकता एवं राजपूत धर्म का पालन किया तथा स्त्रियों का सम्मान किया। 1576 में हज यात्रियों का एक दल गोगुंदा मार्ग से पिंडवाडा गया लेकिन महाराणा प्रताप ने हज यात्रियों को सुरक्षित निकलने दिया। हल्दीघाटी युद्ध के दौरान राजा मानसिंह अपने कुछ साथियों सहित शिकार पर निकला जिसकी सूचना महाराणा प्रताप को मिली लेकिन इस भाँति युद्ध स्थल के अतिरिक्त अन्यत्र शत्रु पर वार करना उन्हें उचित नहीं प्रतीत हुआ। 1580 में अब्दुर्रहीम खानखाना को अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया गया। वह वसेरपुर (शेरपुर) एक बड़ी सेना लेकर पहुँचा। उस समय महाराणा प्रताप के पुत्र कुंवर अमर सिंह ने गोगुंदा पर नियुक्त मुगल सैनिकों को परास्त कर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। कुंवर अमर सिंह ने अचानक खानखाना के शिविर पर आक्रमण कर दिया तथा लूट के माल के साथ खानखाना परिवार की स्त्रियों को भी बंदी बना लिया। इसकी सूचना जब महाराणा को मिली तो उन्होंने कुंवर अमर सिंह को आदेश किया कि खानखाना परिवार की स्त्रियों को आदर व सम्मान के साथ सुरक्षित रूप से मिर्जा

महाराणा प्रताप ने मुगलों से युद्ध के दौरान भी सदैव नैतिकता एवं राजपूत धर्म का पालन किया तथा स्त्रियों का सम्मान किया। 1576 में हज यात्रियों का एक दल गोगुंदा मार्ग से पिंडवाडा गया लेकिन महाराणा प्रताप ने हज यात्रियों को सुरक्षित निकलने दिया। हल्दीघाटी युद्ध के दौरान राजा मानसिंह अपने कुछ साथियों सहित शिकार पर निकला जिसकी सूचना महाराणा प्रताप को मिली लेकिन इस भाँति युद्ध स्थल के अतिरिक्त अन्यत्र शत्रु पर वार करना उन्हें उचित नहीं प्रतीत हुआ।

निस्संदेह मुगल विरोधी संघर्ष में महाराणा प्रताप व उसके परिवार को विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। जंगल और पहाड़ों में अस्थायी निवास करना पड़ा, लेकिन महाराणा प्रताप एवं उसके परिवार के रहन-सहन, खान-पान संबंधी आर्थिक कठिनाइयों का टाड द्वारा वर्णन वास्तविकता से परे तथा अनैतिहासिक है। 'राजप्रशस्ति', 'अमरकाव्यम', 'वंशावली', 'राजविलास' आदि उस युग के ऐतिहासिक ग्रंथों में इस घटना अथवा महाराणा प्रताप के विचलन का कोई भी प्रसंग नहीं मिलता है।

खाँ के पास भेज दें। अमर सिंह ने आदेश का पालन किया। खानखाना राणा की इस उदारता से अत्याधिक प्रभावित हुआ तथा उसने महाराणा प्रताप के प्रति आदर की अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों से की--

'धरम रहसी रहसी धरा, खप जासी खुरसाणा।'
अमर विसम्बर ऊपरे, राख नहच्चो राणा।'

महाराणा प्रताप को अपने कुटुंब सहित शाहनवाज खाँ और जगन्नाथ कछवाहा के आक्रमण के समय विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। उन्हें पहाड़ों और जंगलों में बनाए गए अस्थायी शिविरों, कच्चे मकानों और कंदराओं में भी निवास करना पड़ा, जिसे आधार बना कर कई भ्रांतिपूर्ण किंवदंतियाँ प्रचलित हैं तथा जेम्स टॉड ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'एनाल्स एंड एक्टिविटीज ऑफ राजस्थान' में महाराणा प्रताप की संकटग्रस्त स्थिति का मार्मिक वर्णन करते हुए लिखा है कि महाराणा प्रताप के बच्चे कई दिनों तक भोजन के लिए तड़पते रहते थे। एक समय उसकी रानी ने जंगल अन्न की रोटियाँ बनाई जो कि प्रत्येक के हिस्से में एक-एक आई। उसमें से भी महाराणा प्रताप की पुत्री की रोटी जंगली बिलाव उठा ले गया तथा वह चीत्कार मार कर रोने लगी जिससे कि महाराणा प्रताप विचलित हो उठे और उन्होंने अकबर को अपनी कठिनाइयाँ कम करने के लिए पत्र लिखा। टॉड का यह कथन जनश्रुतियों को आधार बनाकर भ्रांतिपूर्ण मिथ्या कथन करता है।

निस्संदेह मुगल विरोधी संघर्ष में महाराणा प्रताप व उसके परिवार को विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। जंगल और पहाड़ों में अस्थायी निवास करना पड़ा, लेकिन महाराणा प्रताप एवं उसके परिवार के रहन-सहन, खान-पान संबंधी आर्थिक कठिनाइयों का टॉड द्वारा वर्णन वास्तविकता से परे तथा अनैतिहासिक है। 'राजप्रशस्ति', 'अमरकाव्यम', 'वंशावली', 'राजविलास' आदि उस युग के ऐतिहासिक ग्रंथों में इस घटना अथवा महाराणा प्रताप के विचलन का कोई भी प्रसंग नहीं मिलता है। जंगलों और पहाड़ों में शरण लेने के दौरान बच्ची के हाथ से बिलाव द्वारा रोटी छीन ले जाना स्वाभाविक हो सकता है लेकिन महाराणा प्रताप की बदतर आर्थिक स्थिति का परिचायक नहीं हो सकता। महाराणा प्रताप के राजकोष में प्रचुर मात्रा में धन था, जिसे उनके राज्य के प्रधानमंत्री भामाशाह ने सुरक्षित स्थान पर रखा था तथा समय-समय पर महाराणा प्रताप को आवश्यकतानुसार उपलब्ध करता रहता था, जिससे जंगलों पहाड़ों में विचरण करते हुए भी वे अपनी सेना का गठन, उनके लिए रसद आदि

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 38

का इंतजाम करने में सक्षम थे।

नए शोधों से प्रमाणित है कि उनके पास अतुल सम्पत्ति थी। कुम्भा और साँगा ने दूर-दूर से सम्पत्ति एकत्र की थी। बहादुरशाह की प्रथम चढ़ाई के पूर्व (विक्रमादित्य काल में) राज्य की सारी सम्पत्ति चित्तौड़ से हटा ली गई थी जिससे बहादुरशाह तथा बाद में उदय सिंह के समय में अकबर को चित्तौड़ विजय करने के बाद भी किले में कुछ भी सम्पत्ति प्राप्त नहीं हुई थी। उत्तर में कुंभलगढ़ से दक्षिण ऋषभदेव से लगभग 90 मील लम्बा और पूर्व में देबारी से पश्चिम में सिरोही की सीमा तक 70 मील चौड़ा पहाड़ी प्रदेश महाराणा प्रताप के अधीन था। राजपरिवार एवं

सामंतों की स्त्रियाँ तथा उनके बाल-बच्चे सभी सुरक्षित प्रदेश में रहते थे। आवश्यकता पड़ने पर उनके लिए खाद्यान्न गोडवाडा, सिरोही, ईडर तथा मालवा की ओर से मँगवाए जाते थे। पहाड़ी प्रदेश में जल-फल प्रचुर मात्र में उपलब्ध थे तथा बीच के समतल भाग में सैकड़ों गाँव आबाद थे, बस्तियाँ थीं जहाँ मक्का, चना, चावल आदि की खेती होती थी। इस क्षेत्र में पहाड़ी किले थे। गाय आदि जानवरों का बाहुल्य था। दूध, दही आदि पदार्थ आसानी से उपलब्ध थे तथा इन प्रदेशों को घेरने के लिए लाखों मुगल सैनिकों की आवश्यकता पड़ती जो कि संभव नहीं था, क्योंकि जो मेवाड़ का भू-भाग मुगल सेना के अधीन था उसमें ही राणा के छापामार युद्ध से उन्हें वहाँ रुकना ही दूभर हो रहा था। पहाड़ी मार्गों के मुहाने पर महाराणा प्रताप के स्वामीभक्त भीलों की सेना तीर धनुष से लैस उनका सीना छलनी करने को तत्पर थी जिनकी वजह से मुगल सेना इस प्रदेश में घुसने का सहस ना कर सकी। महाराणा प्रताप अपने इस स्वतंत्र क्षेत्र के कारण ही अपने मेवाड़ के स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय हो सके। इतिहासकार गौ. ही. ओझा ने लिखा है कि 'टॉड द्वारा दिया गया विवरण यदि सही होता तो अबुलफजल, जो कि अकबर का खुशामदी इतिहासकार था, इसे काफी बढ़ा-चढ़ा कर लिखता। उसने या अन्य किसी फारसी इतिहासकार ने महाराणा प्रताप की इस दयनीय स्थिति तथा उनके विचलन का उल्लेख अपने किसी ग्रंथ में नहीं किया।

यह हो सकता है कि राजपूतों का मनोबल तोड़ने के लिए अकबर ने इस तरह की अफवाहें फैलाई हों कि महाराणा प्रताप, अकबर की अधीनता स्वीकारने हेतु विवश हो गए हैं। क्योंकि इस तरह की अफवाहें सुनकर महाराणा प्रताप के मौसेरे भाई बीकानेर के शासक रामसिंह के अनुज तथा राजस्थानी भाषा के कवि पृथ्वीराज ने अपने दूत द्वारा दो दोहे लिख कर भेजे थे-

'पातल' जो 'पतसाह', बोले मुख हूँतां बयण।
मिहिर पिच्छिम दिस माह, उगे कास्यपरावउत।।

(अर्थात् यदि प्रताप अपने मुख से अकबर को 'बादशाह' कहे तो कश्यप का पुत्र सूर्य पश्चिम से उदित होगा)।

पटकूं मुछां पांण, कै पटकूं निज तन करद।
दीजै लिख दीवाण, इस दो महली बात इक।।

(अर्थात हे दीवान (मेवाड़ के महाराणा इकलिंग जी (महादेव) के दीवान के रूप में शासन करते थे) मैं अपनी मूंछों पर ताव दूँ अथवा दुखी होकर अपने शरीर में कटार घुसेड़ कर आत्मघात कर लूँ, आप इन दोनों में से एक बात लिख भेजें)

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 39

महाराणा प्रताप ने उत्तर में निम्न दोहा लिख कर भिजवाया-

तुरक कहासी मुख पतै, इण मुख सू इकलिंग।
ऊगे ज्यांही ऊगसी, प्राची बीच पतंग।।

(अर्थात् प्रताप के मुख से अकबर 'तुरक' ही कहलायेगा 'बादशाह' नहीं, इस मुंह से तो इकलिंग (महादेव) ही निकलेगा, सूर्य सदा की भाँति पूर्व से ही उदित होगा)।

पूरी जिंदगी स्वतंत्र रहने वाले महाराणा प्रताप को उनके घोर से घोर शत्रु न मार सके, लेकिन काल के आगे किसका वश। सन् 1597 में 57 वर्ष की अल्पायु में उनका देहावसान किसी बीमारी के फलस्वरूप हो गया। जनश्रुति है कि शेर का शिकार खेलते समय धनुष की कमान इतनी जोर से खींची कि अंग मोड़ते समय आँतों में कुछ खराबी आ गई और वही बीमारी उनकी मृत्यु का कारण बनी। 'महाराणा यशप्रकाश' में लिखा है कि 'ईश्वर की माया अपार है जो वीर मुसलमानों के साथ अनेक लड़ाइयों में घायल ना हुआ और जो अपनी तलवार से अनेक वीरों को मौत की नींद सुलाता रहा, वही वीर कमान खींचने से बीमार होकर इस संसार से सदा के लिए विदा हो गया।' चावंड से लगभग डेढ़ मील बंडोली गाँव के छोटे से नाले के तट पर उस महापुरुष का दाह संस्कार हुआ। वहाँ उनके स्मारक के रूप में सफेद पत्थर की आठ खम्बों वाली छतरी बनी हुई है।

गहलौत राजपूत वंश में 9 मई,1540 ई. में जन्मे महाराणा प्रताप का आन-बान-शान वाला गौरवपूर्ण जीवन ऐसा था कि शत्रु भी उनका आदर करते थे। 'वीर विनोद' के अनुसार महाराणा प्रताप के देहांत की खबर सुन कर बादशाह अकबर हैरानी के साथ चुप रह गए। यह देख कर दरबारियों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि अकबर को खुश होना चाहिए कि उदास। उस समय चारण दुरसा आढा ने एक छप्पय मारवाड़ी भाषा में कहा, जिसका जिक्र सुनकर अकबर ने उसे रूबरू बुलाया और छप्पय सुनकर उसे पुरस्कृत किया तथा कहा कि इस चारण ने प्रताप के मरने पर मेरे दिलगीर होने के सबब को जाहिर कर दिया। छप्पय इस प्रकार था–

अश लेगो अण दाग, पाघ लेगो अण नामी।
गा आडा गवडाय, जिको बहतो धुर बामी।।
नब रोजे नह गयो, नगो आतशा नवल्ली।
न गो झरोखा हेठ, जेथ दुनियाण दहल्ली।
गहलोत राणा जीती गयो, दसण मूंद रशनां डसी।
नीशास मूक भरिया नयण, तो मृत शाह प्रताप सी।।

अर्थात्–अपने घोड़ों को दाग नहीं लगवाया (बादशाही दस्तूर यह था कि जो घोड़े शाही फौज की सेवा में थे उनके पुट्ठों पर दाग लगाया जाता था) अपनी पाघ (सर) को किसी के सामने नहीं झुकाया, आडा (ऐसी कविता जिसमें अदावत रखने वालों पर व्यंग्य हो) गवाता चला गया, जो हिंदुस्तान के भार की गाड़ी को बायीं तरफ खींचने वाला था (बहादुर राजपूतों के लिए कहा जाता है), नौ रोजों के जलसे में कभी नहीं गया, नये आतश (शाही डेरों में नहीं गया और ऐसे झरोखे के नीचे नहीं आया जिसका रौब दुनिया पर गालिब था। ऐसा गहलोत (राणा प्रताप) फतहयाबी (विजेता होकर) के साथ गया, जिससे बादशाह ने जुबान को दाँतों तले दबाया और ठंडी साँस लेकर आँखों में पानी भर लिया! ऐ प्रताप तेरे मरने से ऐसा हुआ।

(वीर विनोद पृष्ठ 215-216)

जिस वीर, स्वाभिमानी, आजादी के दीवाने महाराणा प्रताप की महानता के सामने घोर शत्रु अकबर को भी नतमस्तक होना पड़ा उस वीर महापुरुष महाराणा प्रताप की महानता से किसे इनकार हो सकता है ?

लेखक प्रसिद्ध साहित्यकार हैं।

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 40

भारतीय संस्कृति के दर्पण

प्रेमचंद

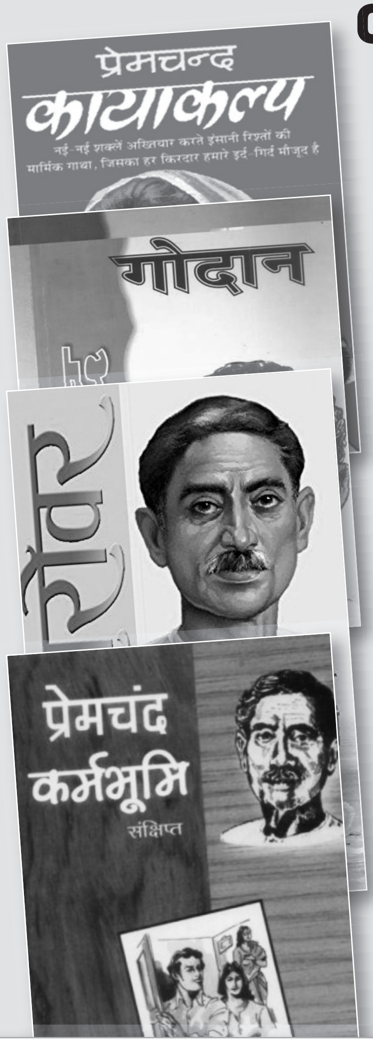

मुंशी प्रेमचंद जमीन से जुड़े साहित्यकार थे। वे भारतीय जनमानस में जड़े थे। वे भारतीय परंपराओं, प्रथाओं, रिवाजों, पारिवारिक मान्यताओं, जीवन मूल्यों से सुपरिचित थे। जनजीवन उनकी रग-रग में बसता था। सहज ही उनका साहित्य भारतीय सभ्यता व संस्कृति को रूपायित करता है।

डॉ. दीनदयाल

संस्कृति, हिंदू संस्कृति, भारतीय संस्कृति आदि की चर्चा बहुत होती है, लेकिन उसके वास्तविक स्वरूप को समझना इतना सरल नहीं। विद्वान 'मुंडे-मुंडे मति भिन्ना' की भाँति उसकी अलग-अलग व्याख्या (परंपरा, रीति-रिवाज आदि) करते जान पड़ते हैं। कुछ तो सभ्यता को ही संस्कृति मान लेते हैं और कहते हैं- प्राचीन संस्कृति, मध्ययुगीन संस्कृति, आधुनिक संस्कृति आदि; परंतु शब्द, अर्थ और शास्त्रीय दृष्टि से दोनों अलग-अलग हैं।

सभ्यता बाहरी होती है, जबकि संस्कृति आंतरिक होती है। सभ्यता काल के अनुसार बदलती रहती है जबकि संस्कृति सनातन होती है। सभ्यता सूझ-समझ, ज्ञान-अनुसंधान आदि बौद्धिक आप्तियों का नाम है, परंतु संस्कृति वह सूक्ष्म दृष्टि है जो उक्त सभी आप्तियों का फल है। संस्कृति संस्कारों का परिणाम है। दीर्घ काल तक अनेक विधि-विधानों को जानने-परखने के बाद हमारा एक रुख विकसित होता है, जो हमारे व्यवहार में झलकता रहता है, जिसका अच्छा व्यवहार होता है उसको सुसंस्कृत कहा जाता है। संस्कृति को सभी ज्ञान-विज्ञानों, कला-कलापों का नवनीत कह सकते हैं। इसमें धर्म, राजनीति, संगीत, कला आदि एवं लौकिक व्यवहार भी सम्मलित हैं। संस्कृति की प्राप्ति दीर्घकालीन होती है, परंतु ज्ञान-विज्ञान आदि के अर्जन में अपेक्षाकृत थोड़ा कम समय

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 41

लगता है। ज्ञान-विज्ञान, साहित्य व कलाएँ बीज के समान हैं। उन सभी के समन्वित उपयोग से धान्य की उपज होती है। उनका सदुपयोग न हो तो धान्य रूपी संस्कृति उपलब्ध नहीं होती है। जैसे विश्व के बहुत से देश ज्ञान-विज्ञान में सबल हैं पर उनका सदुपयोग न करने के कारण संस्कृति की धान्यता से वंचित हैं। सुकृष्ट क्षेत्र में जैसे नमी मिलती है वैसे ही सुसंस्कृत व्यक्ति में विनयशीलता होती है, जिसको अंग्रेजी समालोचक मैथ्यू आर्नल्ड ने 'बौद्धिक माधुर्य' कहा है, जिसके आचार-विचार में मधुरता मिलती है, उसी को सुसंस्कृत पुरुष अथवा स्त्री कहना चाहिए। अनेक प्रकार की क्षमताएँ एवं शक्तियाँ साधन हैं। उनकी मीठी अन्विति की विभूति को संस्कृति कहते हैं।

भारतीय संस्कृति सनातन और नैसर्गिक है। इस संस्कृति का परम लक्षण आचार-विचार की मधुरता है। वैदिक आर्यों की प्रार्थनाओं में उनकी आकांक्षाओं की झलक मिलती है-

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदुसुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।। (यजु. 34-01)

अर्थात् जो दैवी मन जाग्रतावस्था में दूर-दूर तक चला जाता है, जो ज्योतियों में प्रधान ज्योति है वह मेरा मन सदा कल्याणकारी एवं सुंदर संकल्पनाओं वाला हो। वह सदा सभी का भला सोचे। इसी प्रकार लिखा गया है-

मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। (यजु. 36-18)

अर्थात् सभी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें, मैं भी सभी को मित्र की दृष्टि से देखूँ, हम सभी एक दूसरे को मैत्री भाव से देखें, जो प्राणी विश्व-मैत्री के हेतु प्रार्थना करता है वह विश्व-बंधु है। इस बंधुत्व की पुष्टि अन्य अनेक मंत्रों से होती है, जिनमें सर्व-शांति, सर्वतोमुखी मधुरता की कामना की गई है।

ऋग्वेद के एक मंत्र में सर्वोदय के लिए प्रार्थना की गई है, जिसकी पूर्णता देखते ही बनती है। उसमें सुमार्ग से प्राप्त धन, सुबुद्धि, आत्मिक तेज, समृद्धि, शारीरिक स्वास्थ्य, मधुर वचन तथा अच्छे दिनों का वर मांगा गया है-

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि
चितिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषं रयीणामरिष्टं तनूनां
स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्। (ऋ 2-21-6)

आज सर्वोदय का जो आंदोलन चल रहा है, उसका पूर्ण रूप इस वैदिक प्रार्थना में वर्तमान है, कदाचित् अधिक प्रभाव के साथ। जीवन का कोई अंग छूटने नहीं पाया है।

शौर्य का सदुपयोग भारतीय संस्कृति का अंग है, अर्थात् अनीति तथा अन्याय के विरोध में ही बल प्रयोग हो, कुभाव अथवा रोष में नहीं। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति में नारी को पुरुषों के समान, वहीं उनसे भी ऊँचा स्थान दिया गया है। नववधू के लिए ऋग्वेद में कहा गया है-

सम्राज्ञी श्वसुरे भव
सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव
ननान्दरि सम्राज्ञी भव
सम्राज्ञी अधि देवृषु। (ऋ 10-85-46, अ.-14-44)

अर्थात् गृह में सभी के ऊपर तुम्हारा अधिकार हो, तुम सभी की पोषक हो और सभी तुमको प्यार एवं आदर दें। अतः भारतीय संस्कृति में नारी का सम्मान समाज की प्रगति का सबसे बड़ा मानदंड है। इसी प्रकार निष्काम कर्म, सत्य, अहिंसा, परोपकार, करुणा, क्षमा, दया, ममता, त्याग आदि नैतिक तथा सामाजिक आदर्शों

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 42

का मूल हमारी संस्कृति है। इसी से 'सर्वे भवन्तु सुखिनः', 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे विचार मिलते हैं।

उत्कृष्ट, मौलिक, जीवंत साहित्य कभी समाज और संस्कृति की उपेक्षा करके निर्मित नहीं किया जा सकता है। हिंदी साहित्य में भी कवियों और लेखकों द्वारा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष भारतीय संस्कृति को स्थान मिला है, उसकी अभिव्यक्ति हुई है। कथाकार मुंशी प्रेमचंद का साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है। प्रेमचंद ने जिस युग में लेखनी संभाली थी, वह पुनर्जागरण का युग था। इस समय धर्म, समाज, राजनीति और संस्कृति सभी क्षेत्रों में परिवर्तन हो रहा था। प्रेमचंद ने इन सभी परिस्थितियों को आत्मसात कर, उसे अपने कथा साहित्य में अभिव्यंजित किया। इनके साहित्य में ग्राम्य जीवन, भारतीय परिवार की विस्तृत झाँकी के साथ-साथ जनसाधारण की समस्याएँ, आकांक्षाएँ, उलझनें और पारिवारिक गुत्थियाँ भी उपस्थित हैं। इसलिए डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि 'प्रेमचंद के अध्ययन से सारा उत्तर भारत जाना जा सकता है। झोपड़ियों से महलों तक, खोमचे वालों से लेकर बैंकों तक, गाँवों से लेकर धारासभाओं तक, अमीरों से कृषक तक, आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता।'

प्रेमचंद की रचनाएँ मनोरंजन की दृष्टि से नहीं लिखी गई हैं, बल्कि उनमें कोई न कोई सुझाव, जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण, किसी समस्या का हल मिलता है; क्योंकि उनका मनुष्य की असीम शक्ति में विश्वास था। सुधार या आदर्श में पर्यवसान करके उन्होंने मानवतावाद की स्थापना की। उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति के सत्य, अहिंसा, प्रेम, भाईचारा, परोपकार आदि तत्त्व ही श्रेष्ठ बनाने की नींव रूप में सक्रिय हैं। डॉ. राजेश्वर गुरु के अनुसार प्रेमचंद आद्यंत मानवतावादी रचनाकार हैं जोकि भारतीय संस्कृति का मूल तत्त्व है।

वस्तुतः प्रेमचंद पर अनेक विद्वानों, दार्शनिकों व आंदोलनों आदि का प्रभाव पड़ा, जिसके कारण इनका व्यक्तित्व और दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक होता चला गया। जिन दो भारतीय व्यक्तियों और आंदोलनों ने कथाकार प्रेमचंद को विशेष प्रभावित किया, उसमें से एक हैं स्वामी दयानंद सरस्वती और उनके द्वारा प्रवर्तित आर्य समाज के सुधारात्मक आंदोलन, दूसरे हैं महात्मा गांधी और उनके द्वारा चलाए गए अनेक प्रकार के जन-कल्याण और जन-जागरण संबंधी आंदोलन। आर्य समाज के आंदोलनों का प्रभाव प्रेमचंद के व्यक्तित्व में(बाल विधवा से विवाह के रूप में), विचारों में और कार्यों में स्पष्ट दिखता है ही, आरंभिक कहानियों में भी बहुत अधिक स्पष्ट है। इसी प्रकार उन्होंने अपनी कहानियों में गांधी जी के हृदय-परिवर्तन, अहिंसा, सत्य, प्रेम, भाईचारा, सत्याग्रह और ट्रस्टीशिप जैसे कई सिद्धांतों को भी यत्र-तत्र प्रत्यक्ष रूपायित किया है।

प्रेमचंद की रचनाएँ मनोरंजन की दृष्टि से नहीं लिखी गई हैं, बल्कि उनमें कोई न कोई सुझाव, जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण, किसी समस्या का हल मिलता है; क्योंकि उनका मनुष्य की असीम शक्ति में विश्वास था।

प्रेमचंद के जीवन की निष्ठा, राष्ट्रीयता, सादगी, निस्पृहता, अनवरत संघर्ष की अपराजेय प्रवृत्ति आदि सभी बातें निश्चय ही आर्य समाज, गांधीवाद और भारतीय संस्कृति के अचूक प्रभाव को व्यंजित करने वाली हैं। उनका अधिकांश जीवन और सृजन कार्य अहिंसक आदर्शों, बल्कि विशुद्ध मानवतावादी जीवन-दृष्टि के निर्वाह में इस घोर पादार्थिक दृष्टि वाले युग में भी व्यतीत हुआ, इसमें तनिक भी संदेह व्यक्त नहीं किया

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 43

जा सकता है। उनकी समूची अंतः बाह्य चेतना मानवताभिमुखी रही है।

प्रेमचंद ने अपने समूचे साहित्य में उदात्त मानवीय दृष्टि अपनाकर सत्-असत् सभी रूपों को सम्यक् रूप से विचारा है। सत्य, अहिंसा और प्रेम तो गांधी-दर्शन की नीतियाँ हैं, इसलिए उन्हें गांधीवाद की मूल उपलब्धि नहीं माना जा सकता। गांधी जी की सबसे बड़ी उपलब्धि भारतवासियों के मन को निर्भय बनाना था। बाकी बातें, यहाँ तक कि स्वतंत्रता भी उसी निर्भयता से प्रसूत थी। प्रेमचंद ने गांधी जी के इसी मूल दर्शन को पकड़ा था और साहित्य के माध्यम से गाँव से लेकर शहर तक इसी निर्भयता का अलख जगाया था।

'सेवासदन', 'निर्मला', 'गबन', 'प्रतिज्ञा', 'वरदान', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'कायाकल्प' और 'गोदान' प्रेमचंद द्वारा रचित उपन्यास हैं। उन्होंने 'मंगलसूत्र' नाम से एक और उपन्यास भी लिखना आरंभ किया था जो स्वर्गवास होने के कारण अधूरा रह गया। इन उपन्यासों में जीवन-समाज के विविध रंग-रूपों, व्यक्तियों-व्यक्तित्वों को लेकर उसके आदर्श से लेकर यथार्थ तक की सुख-दुखात्मक यात्रा की गई है। 'कर्मभूमि' के अमरकांत के चरित्र का आद्योपांत अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता कि वह भारतीय संस्कृति का अनुयायी है। सादा जीवन, अन्याय का विरोध, समाज सेवा, हरिजनों का उद्धार, मानवीयता की भावना आदि उसके जीवन के मूल तत्त्व हैं।

कहा जा सकता है कि उनकी संवेदना का अधिकारी समाज-जीवन का दलित-पीड़ित व्यक्ति ही अधिक रहा है। अपने उपन्यासों में जीवन चित्रण की यथार्थ प्रक्रिया को अपना कर भी पहले वह अंत में किसी न किसी आदर्श को प्रतिष्ठापित करने की चेष्टा करते रहे हैं; परंतु बाद में 'गोदान' तक पहुँचते-पहुँचते, होरी की विषम परिस्थितियों में मृत्यु दिखाकर, वर्तमान व्यवस्था में उन्होंने आदर्शवादिता को भी मरते हुए दिखा दिया है। यह ध्वनित किया है कि जब तक वर्तमान सड़ी-गली और परंपरागत व्यवस्था को नहीं बदला जाता, तब तक आदर्श की कल्पना आकाश कुसुमवत एक नितांत असंभव बात बनी रहेगी। इसी कारण अपने अंतिम उपन्यास 'मंगलसूत्र' में प्रेमचंद पूर्णतः जीवन के यथार्थ के अभिभावक बन गए लगते हैं।

यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद का कथाकार हृदय यदि किसी चिंतन और उसकी प्रक्रिया से सर्वाधिक प्रभावित हुआ है, तो वह है भारतीय संस्कृति और उसकी व्यापक जीवन-दृष्टि। प्रेमचंद ने वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में उसका सफल परीक्षण भी किया था। वे प्रमुख सिद्धांत हैं- हृदय परिवर्तन का सिद्धांत, सत्य, अपरिग्रह, अहिंसा, प्रेम और भाईचारा के प्रति आग्रह का भाव; छुआछूत, ऊँच-नीच, जाति-पाति का विरोध, आचरण-व्यवहार की शुद्धता और पवित्रता पर बल आदि। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वे समतावादी संत और विचारक थे। वे केवल विचारक ही नहीं परिशोधक और परीक्षक भी थे। पहले स्वयं अपने जीवन में अपना करके तब वह लोगों को उस पर चलने या आचरण करने की बात कहा करते थे।

हृदय-परिवर्तन के सिद्धांत को उनके उपन्यासों-कहानियों में हर पग पर देखा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप 'बड़े घर की बेटी', 'गृह-दाह', 'पंच-परमेश्वर', 'मंत्र', 'विमाता', 'बूढ़ी काकी' आदि कई कहानियाँ इसका प्रमाण हैं। 'कर्मभूमि' के समरकांत का हृदय परिवर्तन भी उपन्यास के अंत में होता दिखाया है। इसी प्रकार प्रेमचंद ने गांधी जी के सत्याग्रह के सिद्धांत का भी अपनी कई कहानियों में सफल प्रतिपादन, निरीक्षण एवं परीक्षण किया है। 'ब्रह्म का स्वर्ग', 'सुहाग की साड़ी', 'लोकमत का सम्मान',

'हिंसा परमो धर्मः', 'सत्याग्रह' आदि कहानियाँ इसी कोटि में आती हैं। 'हिंसा परमो धर्मः' में कहने को तो हिंसा का समर्थन प्रतीत होता है, वस्तुतः इसमें अहिंसा के सत्य का महत्त्व बताया गया है। इस प्रकार निर्भ्रांत रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद की कहानियों में गांधीवादी चेतना, चिंतन, राष्ट्रीयता और भारतीय संस्कृति की उदात्त भावनाएँ घुल-मिलकर एकाकार हो गई हैं। उनका आकलन उन्हें बिलगाकर करना संभव नहीं है।

नवीन राष्ट्रीय चेतना के अनुरूप ही प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में पात्रों की सक्रियता दिखाई। वे गीता या उपनिषद् आदि मात्र इस कारण नहीं पढ़ते, या उनपर आस्था नहीं रखते कि वे भारत की धार्मिक एवं अध्यात्म साधना की धरोहर हैं, बल्कि उन पर आधुनिक मानवतावादी दृष्टि से आस्था इस कारण रखते हैं कि वे हमारी सांस्कृतिक चेतना को उजागर करके राष्ट्रीयता की पहचान वाले महत आलेख हैं। इसी कारण उनकी कहानियों के महत्त्वपूर्ण जागरूक पात्र बाह्याचारों की व्यर्थता उजागर कर उनसे बचे रहने की प्रेरणा देते हुए दीख पड़ते हैं। इस दृष्टि से 'प्रेम द्वादसी' में संकलित उनकी 'शांति' शीर्षक कहानी विशेष पठनीय है। एक उदाहरण देखिए-'रात को एक बजे जब मैं उनके कमरे में गई, मुझे समझाने लगे कि इस प्रकार शरीर को कष्ट देने से क्या लाभ? कृष्ण महापुरुष अवश्य थे और उनकी पूजा करना हमारा कर्तव्य है; पर इस गाने बजाने से क्या फायदा? इस ढोंग का नाम धर्म नहीं है। धर्म का संबंध सच्चाई और ईमान से है, दिखावे से नहीं.... इसी वेदांत ने हमको चौपट कर दिया, हम दुनिया के पदार्थों को तुच्छ समझने लगे; जिसका फल अब भुगत रहे हैं। अब उन्नति का समय है। चुपचाप बैठे रहने से निर्वाह नहीं।'' यद्यपि इन विचारों से कहीं-कहीं भारतीय संस्कृति से विरोधाभास-सा प्रतीत होने लगता है; पर भारतीय संस्कृति ने आचरण की जिस व्यावहारिकता, शुद्धता और सक्रियता पर बल दिया है; वस्तुतः प्रेमचंद की इस कहानी के उपर्युक्त संदर्भ में उसी का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

प्रेमचंद का पहला उपन्यास है- 'सेवासदन'। इसमें हिंदू समाज की विधवा समस्या को चित्रित किया गया है। यह उपन्यास नारी जीवन की विवशताओं, प्रताड़नाओं, अवमाननाओं को बड़ी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से अभिव्यंजित करता है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचंद आदर्श ग्राम की सृष्टि दिखाते हैं जोकि गांधी जी का ही स्वप्न था। 'प्रेमाश्रम' के पश्चात प्रेमचंद का 'रंगभूमि' उपन्यास आता है। इसमें हिंदू, मुसलमान, ईसाई, नागरिक, ग्रामीण के साथ-साथ विभिन्न वर्गों और स्थितियों का वर्णन है। इसके लिखे जाने के समय गांधी जी का सत्याग्रह आंदोलन पराकाष्ठा पर था। गांधी जी के सामाजिक, राजनीतिक तथा आदर्शमूलक विचारों से यह उपन्यास प्रभावित है। सूरदास नामक अंधा पात्र भारतीय ग्रामीण जीवन का प्रतीक है तथा आशावादिता-अजेयता से युक्त गांधीवादिता में पगा हुआ है। वह अंधा होने पर भी निष्ठावान है। विनय, सोफिया और प्रभुसेवक आदि के चित्रण में भी भारतीय संस्कृति युक्त जीवन दृष्टि का प्रभाव है।

गांधी जी ने अछूत-निम्न कहे जाने वाले वर्गों के लिए 'हरिजन' शब्द प्रयोग किया था। प्रेमचंद ने भी 'कर्मभूमि' उपन्यास हो या 'मंदिर' कहानी दोनों में हरिजन की समस्या को उठाया है। 'कर्मभूमि' में निम्न जाति के लोगों को क्या स्थान मिलना चाहिए इस पर विचार किया गया है। प्रेमचंद के अनुसार इन लोगों के कंधों पर समाज का भार है, अतः उन्हें सामाजिक अधिकार प्राप्त होने चाहिएँ। अछूतों की समस्या हमारे समाज की मूलभूत समस्या है। मानवता के कारण भी दलित वर्ग का उद्धार होना ही चाहिए। प्रेमचंद अछूतों की समस्या को केवल हिंदू धर्म की समस्या नहीं मानते, वह इसे वर्ग-संघर्ष का ही एक अंग मानते हैं। अछूतों के मंदिर प्रवेश के अधिकार का समर्थन करके उन्होंने इस समस्या के समाधान का संकेत

दिया है। समाज में समानाधिकार से ही इस समस्या का समाधान हो सकता है। डॉ. शांतिकुमार उन्हें उद्‌बोधन देते हैं कि मन और कर्म की शुद्धता ही धर्म का मूल तत्त्व है। वह उन्हें संगठित करके धर्म के नाम पर उनके साथ होने वाले सामाजिक असमानता के व्यवहार के विरुद्ध आंदोलन छेड़ते हैं। समाज को पुलिस आदि का बल प्राप्त है, किंतु इनके पास आत्मबल है- इसी के बल पर वे अंततः मंदिर में प्रवेश पाते हैं। इस आंदोलन के चित्रण में हरिजन ही नहीं सर्वोदय का ही संदेश है, जिससे इनके साहित्य में भारतीय संस्कृति स्पष्ट लक्षित होती है।

इसी प्रकार कहानीकार प्रेमचंद विरचित 'हिंसा परमो

प्रेमचंद का पहला उपन्यास है- 'सेवासदन'। इसमें हिंदू समाज की विधवा समस्या को चित्रित किया गया है। यह उपन्यास नारी जीवन की विवशताओं, प्रताड़नाओं, अवमाननाओं को बड़ी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से अभिव्यंजित करता है।

धर्मः', 'सत्याग्रह' और 'शंखनाद' जैसी कहानियों में भी व्यापक एवं समग्र भारतीय संस्कृति की चेतना उजागर है। इनमें से पहली कहानी 'हिंसा परमो धर्मः' में सामान्य विवादों पर भड़कने वाली हिंसक भावना पर करारा व्यंग्य करके अहिंसा परमो धर्मः का महत्त्व उकेरा गया है। 'सत्याग्रह' शीर्षक कहानी में सत्याग्रह की आड़ में राजनेताओं द्वारा पकाई जाने वाली खिचड़ी का खट्टा-मीठा स्वाद तो करारे व्यंग्य के रूप में बताया ही गया है, साथ ही सत्याग्रह की मूलभूत आत्मा को उजागर करके उसकी शक्ति, प्रभाव और महत्त्व को भी प्रकाशित कर जन-मानस में उतारने की चेष्टा की गई है। वस्तुतः प्रेमचंद सच्चे भारतीय लेखक थे। आज के साहित्यकार पश्चिम की झूठन चाट रहे हैं। कोई मार्क्स का चश्मा पहनकर सोवियत रूस और चीन की तर्ज पर हिंदुस्तानी समाज की समस्याओं से जूझने की बात करता है, कोई नकलची है, तो कोई अभारतीय धाराओं का पिछलग्गू है; लेकिन किसी के पास प्रेमचंद जैसी विशुद्ध भारतीय, सांस्कृतिक, नैतिक व मौलिक दृष्टि नहीं दिखती है।

प्रेमचंद की भाषा भी उनके साहित्य की भाँति संस्कृति से आच्छादित है। प्रेमचंद के युग में भाषा को लेकर हिंदी-उर्दू खेमों में बाँटकर हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिकता का खूनी खेल खेला गया, जिसकी परिणति अंततः भारत विभाजन की त्रासदी के रूप में सामने आई।

प्रेमचंद ने जब देखा था कि हिंदी भाषा को दक्षिण भारत की दलीय राजनीति में दला जा रहा था, तब वे इसी मनोवृत्ति का विरोध कर रहे थे- 'जन भाषा के बिना, साधारण जन से एकाकार हुए बिना कोई राष्ट्र, कोई संस्कृति फल-फूल नहीं सकती, कोई देश का, समाज का विकास नहीं कर सकता।' अतः उन्होंने अपना समस्त लेखन कार्य हिन्दी भाषा में किया। उनकी हिंदी 'हिंदुस्तानी' है, जिसमें उर्दू का भी संस्कार है पर यह हिंदी गालिब की भाषा की भांति अरबी, फारसी के तत्समवत् शब्दों से बोझिल नहीं है। वस्तुतः प्रेमचंद का साहित्य भारतीय संस्कृति का वह चेहरा है, जिसे पढ़कर हमें अपने दिल में झाँकने, टटोलने का अवसर मिलता है, जिसमें हमारी चूक का पता चलता है कि हम कहाँ फिसले हैं, हम अभी तक अपने को फिसलन से क्यों नहीं बचा पाए और नहीं बचा पा रहे हैं। इनका साहित्य हमें भारतीय संस्कृति की महत्ता से जोड़कर हमें सुपथ पर लाने का भरसक और सार्थक प्रयास करता है।

लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं।

आज भारत में बढ़ते पश्चिमीकरण से भारत जितना चिंतित हैं, उससे कई गुना अधिक, अमरीका में बढ़ते भारतीयकरण से कट्टरवादी अमरीका चिंतित हैं। भारतीय अध्यात्म, दर्शन और योग ने आज पूरे अमरीकी समाज को उद्वेलित कर दिया है। उनकी पारंपरिक आस्थाओं और मान्यताओं को विचलित कर दिया है। केवल पढ़े-लिखे उच्च वर्ग के ही नहीं, साधारण अमरीकी तक भारतीयता के रंग में इतने रंग गए हैं कि प्रतिष्ठित अमरीकी साप्ताहिक 'न्यूजवीक' में 15 अगस्त, 2009 को एक लेख छपा था, जिसके शीर्षक का हिंदी में अनुवाद है - 'हम सब हिंदू हैं अब।'

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 47

भौतिकता के अंधकार में भारतीय अध्यात्म का दीपक

दया प्रकाश सिन्हा

अंग्रेजी में एक कहावत है, जिसका अर्थ है- 'सब सड़कें रोम को ले जाती हैं।' एक समय था जब पूरे यूरोप पर रोमन साम्राज्य का एकच्छत्र राज्य था। उसकी राजधानी रोम, सभ्यता, साहित्य, कला, संस्कृति एवं सैन्यशक्ति का केंद्र थी। इसलिए पूरा यूरोप रोम की ओर देखता था और सभी सड़कें रोम जाती थी। फिर औपनिवेशिक काल में, इंग्लैंड ने दुनिया के मानचित्र को लाल रंग में रंग दिया। अंग्रेजी राज में सूरज नहीं डूबता था। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् और रूस के विघटन के बाद, अमरीका ने वही स्थान प्राप्त कर लिया है, जो कभी रोम और लंदन का होता था। आज अमरीका विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली देश है।

आज भारत में बढ़ते पश्चिमीकरण से भारत जितना चिंतित हैं, उससे कई गुना अधिक, अमरीका में बढ़ते भारतीयकरण से कट्टरवादी अमरीका चिंतित हैं। भारतीय अध्यात्म, दर्शन और योग ने आज पूरे अमरीकी समाज को उद्वेलित कर दिया है। उनकी पारंपरिक आस्थाओं और मान्यताओं को विचलित कर दिया है। केवल पढ़े-लिखे उच्च वर्ग के ही नहीं, साधारण अमरीकी तक भारतीयता के रंग में इतने रंग गए हैं कि प्रतिष्ठित अमरीकी साप्ताहिक 'न्यूजवीक' में 15 अगस्त, 2009 को एक लेख छपा था, जिसके शीर्षक का हिंदी में अनुवाद है- 'हम सब हिंदू हैं अब।' लेखिका लिज़ा मिलर ने लिखा कि अब 'अमरीका ईसाई राष्ट्र नही है।' इस कथन को स्पष्ट करते हुए उन्होंने आगे लिखा कि यह सही है कि अभी भी 76 प्रतिशत अमरीकी अपने आप को ईसाई कहते हैं किंतु हाल में हुए जनमत संग्रहों के अनुसार उनकी 'ईश्वर' 'मनुष्य' और 'परलोक' की मान्यताएँ हिंदुओं जैसी अधिक हैं, ईसाइयों जैसी कम। ऋग्वेद में कहा गया है- 'सत्य एक है जिसे विद्वान विविध नामों से पुकारते हैं।' इसके विपरीत ईसाई अपने 'संडे स्कूल' में सीखते हैं कि केवल ईसाई धर्म सच्चा है और दूसरे सब धर्म झूठे हैं। सामान्य अमरीकन अब यह ईसाई मान्यता स्वीकार नहीं करता।

'प्यू फोरम' (Pew Forum) नामक संस्था द्वारा कराए गए जनमत संग्रह के अनुसार 65 प्रतिशत

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 48

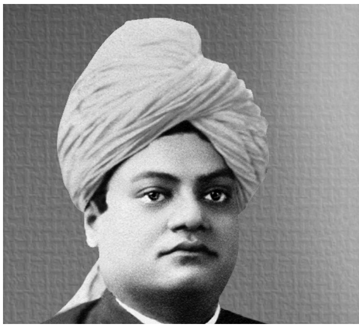

स्वामी विवेकानंद पहले हिंदू स्वामी थे, जो सन् 1893 में अमरीका पहुँचे थे। किंतु उनके अमरीका पहुँचने के लगभग 80 वर्ष पूर्व ही, हिंदू अध्यात्म और दर्शन का बीज, अमरीका की धरती पर स्वतः अंकुरित हो चुका था। यह चमत्कार जैसा है।

अमरीकी अब यह विश्वास करने लगे हैं कि 'अनंत जीवन' (मोक्ष) केवल ईसाई धर्म से ही नहीं, अलग धर्मों से भी प्राप्त किया जा सकता है। वह हिंदुओं की तरह दूसरे धर्मों के प्रति उदार हो गए हैं और अन्य धर्मों की अच्छी बातें स्वीकार करने को उद्यत रहते हैं।

लिज़ा मिलर आगे लिखती हैं कि ईसाई विश्वास है कि मरने के बाद आत्मा और शरीर अलग-अलग हो जाते हैं, और 'अंतिम न्याय के दिन' पुनः जोड़ दिए जाते हैं। इस तरह ईसाई धर्म में मृत शरीर का बहुत महत्त्व है। हिंदुओं के अनुसार, मरने के पश्चात् आत्मा पुनर्जन्म लेती है और नया शरीर प्राप्त करती है। इस तरह हिंदू मत में पुराने मृत शरीर का कोई उपयोग नहीं है और वे उसे अंतिम क्रिया में जला देते हैं।

सन 2008 में संपन्न 'हैरिस जनमत संग्रह' के अनुसार 24 प्रतिशत अमरीकी, हिंदुओं की तरह पुनर्जन्म में विश्वास करने लगे हैं और इसलिए लगभग एक तिहाई अमरीकी, मृतक का दाह-संस्कार करने लगे हैं।

'न्यूजवीक' पत्रिका के 'जनमत संग्रह' के अनुसार, सन् 2005 में, 24 प्रतिशत अमरीकी अपने आपको 'आध्यात्मिक' कहते थे, जो किसी धर्म (मजहब) को नहीं मानते थे। यह संख्या सन् 2009 में किए गए जनमत संग्रह के अनुसार, बढ़कर 30 प्रतिशत हो गई है।

लेखिका के अनुसार, अमरीकी धर्म परिवर्तन करके हिंदू नहीं बन गए हैं, किंतु अपनी आस्थाओं, विचार और व्यवहार में हिंदुओं जैसे हो गए हैं। उनके लेख का समापन वाक्य है- 'हम सबको 'ओम्' कहना चाहिए।'

अमरीका में आध्यात्मिकता के विस्तार पर दिसंबर 2010 में 'अमेरिकन वेद' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है। इसके लेखक फिलिप गोल्डबर्ग ने पुस्तक सकारात्मक दृष्टिकोण और सहानुभूति से लिखी है। उन्होंने पुस्तक के समर्पण में लिखा है- 'पूजनीय ऋषियों, सद्गुरुओं और आचार्यों को।'

400-पृष्ठों की पुस्तक 'अमेरिकन वेद' बहुत महत्त्वपूर्ण है। पिछले सौ वर्षों में, अमरीका में भारतीय अध्यात्म, योग और ध्यान के विस्तार और स्वीकृति का, यह एक गहन और शोधपूर्ण दस्तावेज है। इसके फलस्वरूप अमरीकी चिंतन और मानस में आए क्रांतिकारी किंतु सकारात्मक परिवर्तनों का भी विश्लेषण यह पुस्तक करती है। कैसे, किन मार्गों से, भारतीय चिंतन ने अमरीका में प्रवेश किया, कैसे योग, ध्यान, मंत्र, चक्र, गुरु, कर्म आदि आज उनकी बोलचाल की भाषा में समा गए हैं, कैसे पुनर्जन्म और कर्मफल उनके विश्वास केंद्र बन गए हैं- इसका विषद लेखा इस पुस्तक में है।

स्वामी विवेकानंद पहले हिंदू स्वामी थे, जो सन् 1893 में अमरीका पहुँचे थे। किंतु उनके अमरीका पहुँचने के लगभग 80 वर्ष पूर्व ही, हिंदू अध्यात्म और दर्शन का बीज, अमरीका की धरती पर स्वतः अंकुरित हो चुका था। यह चमत्कार जैसा है।

ईस्ट इंडिया कंपनी के जहाज, भारत से कच्चा माल, चाय, मसाले आदि अमरीका ले जाते थे। उनके द्वारा कभी-कभी, भारतीय धर्म और दर्शन पर अंग्रेजों द्वारा लिखित और अनुवादित पुस्तकें भी अमरीका पहुँच जाती थी। इन पुस्तकों को पूर्व अमेरिकन राष्ट्रपति जेफरसन और जॉन एडम्स ने पढ़ा और वे भारतीय जीवन दर्शन के

प्रशंसक बन गए। इन पुस्तकों को अमरीकी मनीषा के अग्रगामी, अध्येताओं - एमर्सन, थोरो और व्हिटमैन ने पढ़ा और इतने अभिभूत हुए कि उन्होंने भारतीय दर्शन को अपना लिया। उनकी रचनाओं में वेदांत, पुनर्जन्म, कर्म आदि के संदर्भ और भाव समावेशित हो गए। सन् 1831 में गीता का अनुवाद पढ़ कर एमर्सन ने लिखा- 'सब पुस्तकों में यह प्रथम (सर्वश्रेष्ठ) पुस्तक है। ऐसा लगा कि किसी महान साम्राज्य ने हमसे बात की है। कोई छोटी या क्षुद्र बात नहीं, अपितु गंभीर, महान और सार्थक जैसे दूसरे संसार में, दूसरे युग में किसी ने विचार करके उन प्रश्नों का समाधान दिया हो जो हमें उलझाते हैं।'

स्वामी विवेकानंद के पश्चात् स्वामी रामतीर्थ, परमहंस योगानंद, महर्षि महेश योगी, स्वामी भक्ति वेदांत, स्वामी राम, स्वामी सच्चिदानंद आदि अनेक गुरुओं और सन्यासियों ने अमरीका की धरती पर भारतीय नवांकुर को सींच कर बड़ा किया। इसके साथ ही योग और आयुर्वेद का भी प्रचार हुआ।

एक जनमत संग्रह के अनुसार एक करोड़ साठ लाख अमरीकी प्रतिदिन नियमित रूप से योगासन करते हैं। योग से संबंधित मासिक पत्रिका 'योगा जर्नल', पिछले पैंतीस वर्षों से नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है जिसकी वितरण संख्या लगभग साढ़े तीन लाख है। भारत में 'योगा-जर्नल' के स्तर की एक भी पत्रिका प्रकाशित नहीं होती है। योग पर अनेक दूसरी पत्रिकाएँ भी हैं जिनकी वितरण संख्या लाखों में हैं। बड़े नगरों में प्रायः हर गली में 'योगा-स्टूडियो' मिल जाते हैं। धीरे-धीरे भारतीय जीवन-दृष्टि और धार्मिक अवधारणाएँ अमरीकी जीवन में स्थान बना रही हैं।

आज, अमरीका में हिंदू आध्यात्मिकता की लोकप्रियता और संस्थागत उपस्थिति का अनुमान फिलिप गोल्डबर्ग के निम्नलिखित शब्दों से लगाया जा सकता हैः- 'मैं लॉस एंजल्स में अपने घर से, पाँच से तीस मिनट के भीतर किसी भी निम्नलिखित स्थान पर पहुँच सकता हूँ; हरे कृष्णा मंदिर; आनंद एल.ए.; सिद्धयोग मेडिटेशन सेंटर; श्री अरबिंदो सेंटर; राधा गोविंद धाम; सत्य साई बाबा मंदिर; माता अमृतानंदमयी आश्रम तथा रमन महर्षि, नीम करोड़ी बाबा, स्वामी रुद्रानंद, कृष्णमूर्ति आदि के भक्तों के सत्संग या अध्ययन कक्ष। वहाँ से, दस से बीस मिनट की दूरी पर हैं- ए.आर.ए.एफ.मदर सेंटर, साई अनंत आश्रम, आर्ट ऑफ लिविंग आश्रम, मलीबू टेंपल, ब्रह्मकुमारी सेंटर तथा अनेक आर्युवैदिक क्लिनिक और बहुतेरे योगा स्टूडियो।'

केलिफोर्निया के छोटे से नगर फ्रीमॉन्ट का मंदिर एक चर्च के भवन में स्थित है। चर्च के हॉल में अब राम, कृष्ण, शंकर और दुर्गा की मूर्तियाँ विराजती हैं। मुझे इस मंदिर में दर्शन करने का सौभाग्य मिला। बताया गया कि अमरीका में अनेक मंदिर, पूर्व-चर्चों के भवन में स्थित हैं। स्थानीय अमेरीकी अब हर रविवार चर्च नहीं जाते। अतःएव चर्चों की देखरेख अब व्ययसाध्य है। इसलिए वे अब बेच दी जाती हैं। चर्च धार्मिक भवन होते हैं। अतः उनमें मंदिरों की स्थापना अमरीका के कानून के अंतर्गत सर्वथा उचित है।

ऐसा प्रतीत होता है कि अमरीका में हिंदू विचार की प्रतिष्ठा, विश्व के दूसरे देशों में भी हिंदू जीवन-दृष्टि की स्थापना की दिशा में पहली सीढ़ी है। इतिहासकार विल ड्यूरेंट के शब्दों में 'शायद, पराजय, अहंकार और शोषण के बदले में भारत हमें सहिष्णुता, सभ्य मानस की विनम्रता, आत्मा का लोभहीन संतोष एवं शांति तथा समस्त प्राणिजगत् के प्रति प्रेम की शिक्षा देगा।' आज इतिहासज्ञ बिल ड्यूरेंट की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो रही है 'कभी भारत विश्वगुरु था और पुनः भविष्य में विश्वगुरु बनेगा'।

लेखक भारतीय प्रशासनिक सेवा के पूर्व अधिकारी हैं।

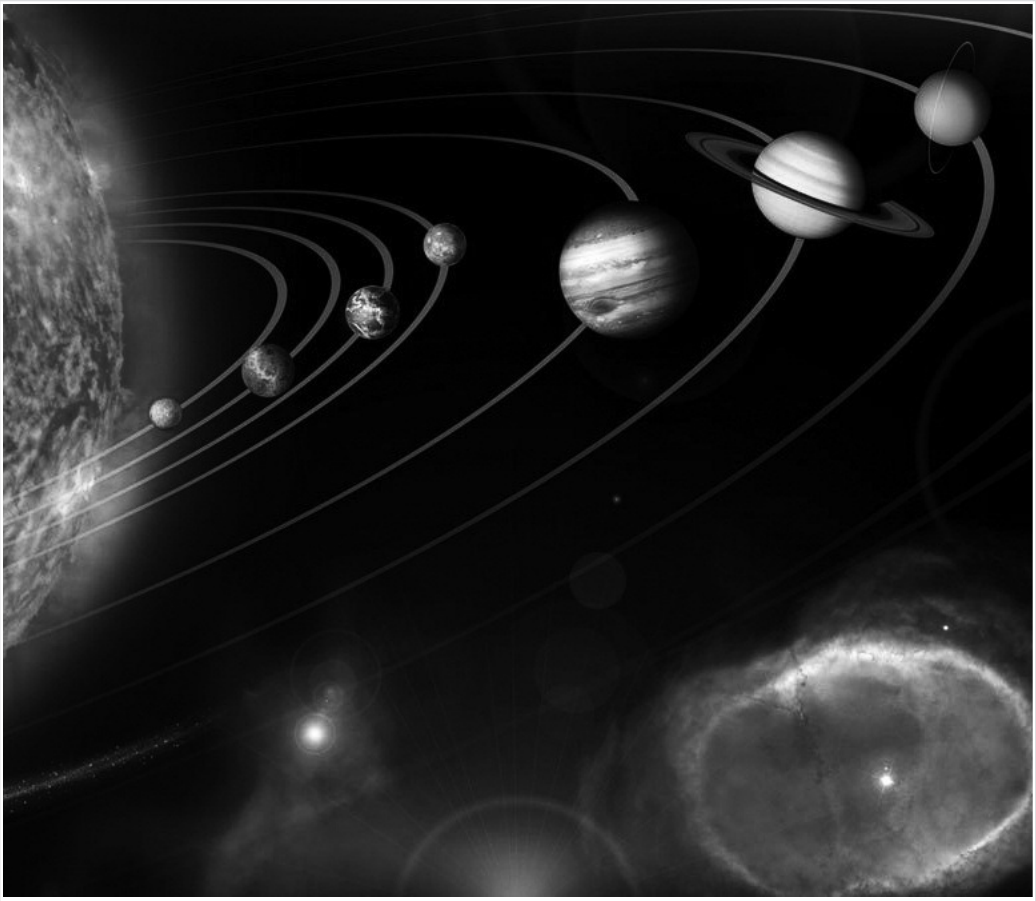

परिवार भारतीय संस्कृति का मूल आधार है। रिश्ते-नातों की ऐसी व्यवस्थित और मजबूत श्रृंखला केवल भारत में ही है जो व्यक्ति, परिवार और समाज को आपस में जोड़कर रखती है। भारतीय मनीषियों ने इस व्यवस्था का विस्तार इस सीमा तक कर दिया कि 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना हमारी संस्कृति के प्रमुख चिंतन बिंदुओं में सम्मिलित हो गई। भारतीय ऋषियों ने न केवल अध्यात्म और संस्कृति के ताने-बाने प्रकृति/विज्ञान के आधार पर बुने वरन् जीवन शैली की रचना भी उसी आधार पर की। यह मात्र संयोग नहीं है कि आधुनिक विज्ञान में रसायन शास्त्र, भौतिक विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र और जीव विज्ञान आदि में समान गुण-धर्म पर आधारित परिवार व्यवस्था देखने को मिलती है। प्रस्तुत है प्रकृति की इस परिवार व्यवस्था पर दृष्टिपात करता यह लेख।

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 51

विज्ञान में परिवारवाद

डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल, डॉ. आर.के. अवस्थी, डॉ. एस.एन मिश्रा

परिवार व्यवस्था भारतीय जीवन शैली का मूलाधार है। सच पूछिए तो इस देश के ऋषियों, मुनियों और तपस्वियों ने इस व्यवस्था का विस्तार इस सीमा तक कर दिया कि 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना हमारी संस्कृति के प्रमुखतम चिंतन बिंदुओं में सम्मिलित हो गई। इसीलिए यहाँ सामान्य परिवार की परिधि भी तथाकथित आधुनिक पश्चिमी समाज की भाँति संकुचित न होकर अत्यधिक विस्तारित रही है। यहाँ निकटस्थ रिश्तों, माँ-बाप, दादा-दादी, नाना-नानी, भाई-बहन, चाचा, बुआ, मामा, मौसा आदि की भरमार है, जबकि उस समाज में ऐसे रिश्ते, माँ-बाप, दादा-दादी, बहन-भाई आदि तक सिमट कर रह जाते हैं; वहाँ नाना-नानी और मामा-मामी भी इस परिधि के बाहर ही हैं। भारतीय व्यवस्था वस्तुतः न केवल अधिक विस्तारित बल्कि अधिक सुगठित सशक्त और जीवंत सिद्ध हुई है। इसका कारण अत्यंत सीधा-सादा और सरल है। यहाँ मनीषियों ने न केवल अध्यात्म और संस्कृति के ताने-बाने प्रकृति/विज्ञान के आधार पर बुने बल्कि जीवन शैली की रचना भी उसी आधार पर की। इसीलिए यह उचित ही होगा कि हम इस बात की पड़ताल करें कि क्या विज्ञान के विभिन्न अंग-प्रत्यंगों में भी इस परिवार व्यवस्था का कोई अस्तित्व है? रसायन शास्त्र, भौतिकी, नक्षत्र विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र एवं जंतु शास्त्र में कतिपय उदाहरणों के साथ यह पड़ताल निश्चित रूप से रोचक सिद्ध होगी।

रसायनशास्त्र और परिवार

रसायनशास्त्र में ऐसी व्यवस्था का ज्वलंत उदाहरण तत्त्वों की आवर्त सारणी (पीरियाडिक टेबल) है। सारणी में सभी तत्त्व, ज्ञात और अज्ञात, 18 वर्गों में समायोजित किए गए हैं। प्रत्येक वर्ग को हम तत्त्वों का एक लघु परिवार कह सकते हैं क्योंकि जिस प्रकार किसी भी परिवार विशेष में सदस्यों में व्यक्तित्व और आचरणगत कुछ सामान्य विशिष्टताएँ होती हैं (जिन्हें हम उस परिवार के संस्कार कह सकते हैं), इसी प्रकार किसी भी वर्ग विशेष के सभी तत्त्वों के रासायनिक गुणधर्म समान से होते हैं। शून्य वर्ग के सभी तत्त्व (हीलियम, आर्गन

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 52

आदि गैसें) गैसें हैं और इनकी रासायनिक क्रियाशीलता लगभग शून्य होती है। एक वर्ग सोडियम, पोटैशियम आदि क्षार धातुओं का है। ये सभी रासायनिक रूप से अत्यधिक क्रियाशील हैं और जल के साथ अभिक्रिया कर कास्टिक सोडा, कास्टिक पोटाश आदि क्षारों का निर्माण करती हैं। इसी प्रकार, एक वर्ग आभूषण धातुओं तांबा, रजत और स्वर्ण का है। इनकी अभिक्रियाशीलता, विशेष रूप से स्वर्ण और रजत की, अत्यंत कम होती है। ये सभी धातुएँ अपने ऊपर बैक्टीरिया को भी नहीं पनपने देती। भारतवर्ष में पेयजल का संग्रहण तांबे के पात्र में करने की परंपरा इसी तथ्य पर आधारित प्रतीत होती है और हमारे पूर्वजों की विकसित वैज्ञानिक मानसिकता की ओर इंगित करती है। इतनी समानताओं के होते हुए भी एक वर्ग में ऊपर से नीचे आते-आते तत्त्वों के सामान्य गुणों में व्यवहारगत किंचित, क्रमिक परिवर्तन उसी प्रकार होता जाता है जैसे पीढ़ी दर पीढ़ी व्यवहारगत परिवर्तन किसी भी सामान्य परिवार में होता है।

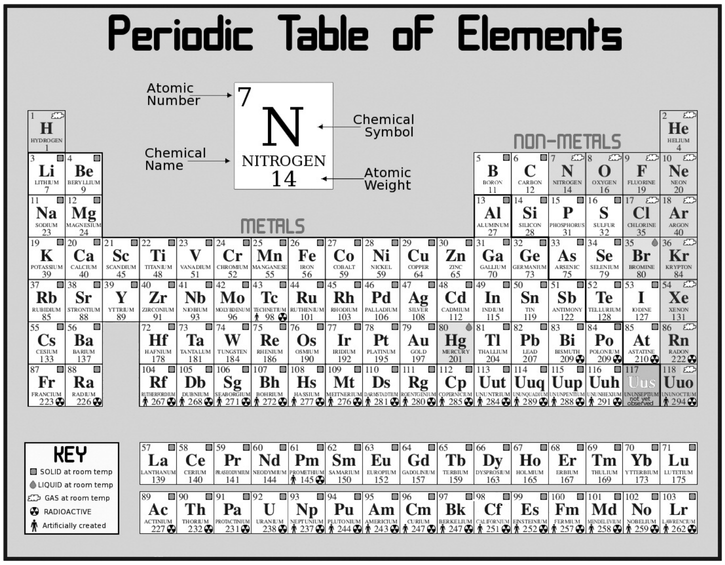

तत्त्वों की आवर्त सारणी

हैलोजन परिवार (वर्ग) के प्रथम तीन सदस्य फ्लुओरीन, क्लोरीन और ब्रोमीन गैसें हैं, परंतु वर्ग के अंतिम सदस्य, आयोडीन और ऐस्टेटीन अपने सामान्य रूप में ठोस हैं, बिलकुल अंतिम ऐस्टेटीन तो रेडियोधर्मी भी है और उसका स्थायित्व अत्यंत सीमित-सा ही होता है। वर्ग का तीसरा सदस्य ब्रोमीन तो सामान्य अवस्था में द्रव है जो थोड़े से अधिक ताप पर ही वाष्पीकृत हो जाता है। इस प्रकार वर्ग में गैस से द्रव और द्रव से ठोस अवस्था तक का क्रमिक परिवर्तन देखने को मिलता है। ऐस्टैटीन की भाँति कुछ अन्य वर्गों के भी अंतिम सदस्य जैसे फ्रैंसियम, रेडियम, पोलोनियम, रेडॉन आदि रेडियोधर्मी और इसीलिए क्षयशील होते हैं। कहा जा सकता है कि जिस प्रकार परिवार में बढ़ता मोटापा बढ़ती हुई बीमारी/बीमारियों का जनक होता है, वैसे ही वर्गों में चूंकि परमाणुभार ऊपर से नीचे की ओर बढ़ता जाता है, अंतिम सदस्य, अत्यधिक मोटा और बीमार (क्षयशील) हो जाता है। अच्छे भले संस्कारित परिवारों में भी एक-दो बच्चों में संस्कारहीनता और समाजद्रोही प्रवृत्ति के लक्षण दिख जाना आम बात है और हम वर्गों के इन रेडियोधर्मी तत्त्वों की तुलना ऐसे ही बच्चों से भी सरलतापूर्वक कर सकते हैं।

दो भिन्न परिवारों के मध्य विवाह प्रथा तो सनातन है तथा तत्त्वों के परिवार में भी यह परंपरा रासायनिक बंधता के रूप में देखने को मिलती है। सोडियम क्षार परिवार का तत्त्व है और क्लोरीन हैलोजेन का। परंतु दोनों एक बंधन में बंध कर उसी भाँति सोडियम क्लोराइड बना लेते हैं जैसे पति-पत्नी एक नई इकाई की सृष्टि कर देते हैं।

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 53

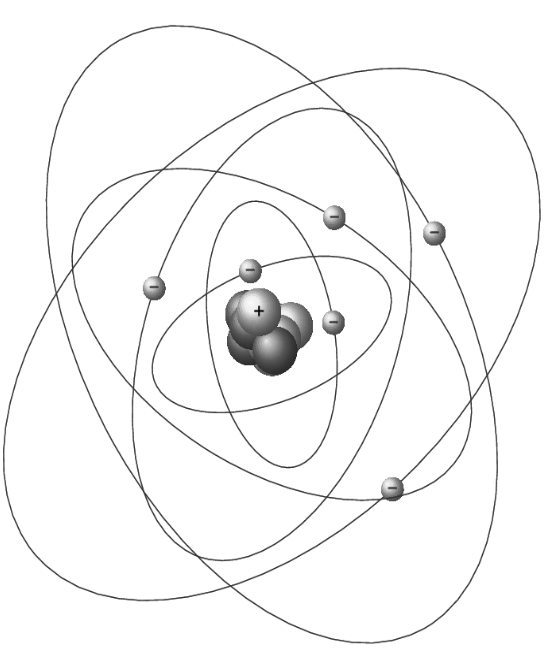

परमाणु संरचना को देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन मिल कर परमाणु नामक परिवार की रचना करते हैं। ये सभी किसी भी सामान्य परिवार के सदस्यों की भाँति अपनी-अपनी कक्षाओं में ही बंधे रह कर मर्यादा का निर्वाह करते हैं। जब भी इनमें से कोई मर्यादा तोड़ता है तो परमाणु परिवार में सामान्य परिवार की ही भाँति शक्तिक्षय (सामर्थ्य क्षय!) देखने को मिलता है। यदि कोई इलेक्ट्रॉन अपनी कक्षा का अतिक्रमण कर दूसरी कक्षा में कूद जाए तो यह क्षय एक्स-किरण उत्सर्जन के रूप में दिखता है और यदि वह सीधे न्यूक्लियस में गिर कर प्रोटॉन से संयोग कर ले तो दोनों ही नष्ट हो कर केवल आवेशहीन न्यूट्रॉन में बदल जाते हैं।

हमारा विश्वास है कि आज का अति विशाल मानव समाज एक ही वृहत् परिवार है क्योंकि उसका प्रारंभ एक ही मूल पुरखे मनु से हुआ। विज्ञान में भी समस्त तत्त्वों का समायोजन एक ही आवर्त सारणी में करना, जिसमें उनकी समानता और गुण धर्म में क्रमिक परिवर्तन आदि स्पष्ट दृष्टिगत होते हैं, इसी वैज्ञानिक चिंतन का समानांतर प्रस्तुत करता है। इसका आधार है कि तत्त्वों के संसार (या कहें परिवार) में मनु का प्रतिरूपी हाइड्रोजन है जिसके न्यूक्लियस में प्रोटॉन संख्या में क्रमशः वृद्धि (कतिपय वैज्ञानिक नियमों के अनुसार) अंततः नए-नए तत्त्वों की उत्पत्ति का आधार बनी।

परमाणु संरचना और परिवार

परमाणु संरचना को देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन मिल कर परमाणु नामक परिवार की रचना करते हैं। ये सभी किसी भी सामान्य परिवार के सदस्यों की भाँति अपनी-अपनी कक्षाओं में ही बंधे रह कर मर्यादा का निर्वाह करते हैं। जब भी इनमें से कोई मर्यादा तोड़ता है तो परमाणु परिवार में सामान्य परिवार की ही भाँति शक्तिक्षय (सामर्थ्य क्षय!) देखने को मिलता है। यदि कोई इलेक्ट्रॉन अपनी कक्षा का अतिक्रमण कर दूसरी कक्षा में कूद जाए तो यह क्षय एक्स-किरण उत्सर्जन के रूप में दिखता है और यदि वह सीधे न्यूक्लियस में गिर कर प्रोटॉन से संयोग कर ले तो दोनों ही नष्ट होकर केवल आवेशहीन न्यूट्रॉन में बदल जाते हैं।

सौरमंडल

परिवार व्यवस्था पूर्ण रूप से वैज्ञानिक और इसीलिए शाश्वत और सनातन है। इसीलिए उसके अस्तित्व का आभास प्रकृति में सर्वत्र मिलता है, यहाँ तक कि नक्षत्र मंडल में भी। हमारे सौर मंडल में किसी सामान्य परिवार के कर्ता की भाँति सूर्य पृथ्वी, मंगल, शुक्र

आदि सभी ग्रहों को बांध कर रखने के उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है। इसी सौर परिवार में कुछ उपपरिवार भी देखने को मिलते हैं बिल्कुल उसी तरह जैसे संयुक्त परिवार में छोटे-छोटे उपपरिवार विकसित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ अपनी पृथ्वी चंद्रमा के साथ मिल कर एक उपपरिवार की रचना करती है जबकि शनि ग्रह के अपने उपपरिवार में 62 और बृहस्पति के उपपरिवार में 63 चंद्र सदस्य हैं। स्मरणीय है कि आकाश गंगा में तो ऐसे अनेक सौर परिवारों एवं उनके उपपरिवारों की उपस्थिति के चिह्न स्पष्ट देखे गए हैं।

परिवार व्यवस्था पूर्ण रूप से वैज्ञानिक और इसीलिए शाश्वत और सनातन है। इसीलिए उसके अस्तित्व का आभास प्रकृति में सर्वत्र मिलता है, यहाँ तक कि नक्षत्र मंडल में भी। हमारे सौर मंडल में किसी सामान्य परिवार के कर्ता की भाँति सूर्य पृथ्वी, मंगल, शुक्र आदि सभी ग्रहों को बांध कर रखने के उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है। इसी सौर परिवार में कुछ उपपरिवार भी देखने को मिलते हैं बिल्कुल उसी तरह जैसे संयुक्त परिवार में छोटे-छोटे उपपरिवार विकसित हो जाते हैं।

जीव जगत्

विज्ञान ने सिद्ध किया है कि जीव और वनस्पति जगत में भी परिवार उपस्थित हैं। जीव जगत को विज्ञान मुख्यतः दो अत्यंत विशालकाय परिवारों में विभाजित करता है- रीढ़ की हड्डी वाला परिवार एवं रीढ़हीन परिवार। इनमें प्रत्येक की विशालता के कारण इनमें अनेकानेक शाखाओं, प्रशाखाओं की उपस्थिति परिवारवाद की सामान्य संकल्पना के संगत ही है और ऐसे उपपरिवारों में कतिपय प्रवृत्तियों का भिन्न दिशाओं में विकास भी तर्क संगत ही कहा जाएगा। रीढ़युक्त विशाल परिवार से ऐसे कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे। इस परिवार के 'मैमेलिया वर्ग' (मैमेलिया उपपरिवार) में स्तनधारी जीव, 'एवीज़' में नभचर (पक्षी), 'एंफीबिया' में मेढक आदि उभयचर और सरीसृप अर्थात 'रेप्टीलिया' में रेंगने वाले जीव जैसे छिपकली, साँप, कछुआ आदि आते हैं। रीढ़ वाले विशाल परिवार के सबसे निचले पायदान पर मत्स्य अथवा मछली उपपरिवार माना गया है। इस उपपरिवार की समान्य विशिष्टता है सभी सदस्यों का जलचर होना जो अपने गलफड़ों की सहायता से जल में घुलित ऑक्सीजन ग्रहण कर जीवन के अस्तित्व को बनाए रखते हैं। इसीलिए उनका निरंतर पानी में बना रहना आवश्यक है, परंतु एनाबास वर्ग की मछलियाँ न केवल कई दिनों तक पानी के बाहर रह सकती हैं बल्कि वृक्षों पर चढ़ भी सकती हैं। हिप्पोकैंपस मछलियों में जन्म देने की प्रक्रिया नर द्वारा पूर्ण की जाती है, जबकि बिजली मछली अपने शरीर से सुरक्षा के लिए 600 वोल्ट और एक एंपीयर तक का विद्युत करंट उत्सर्जित कर सकती है। कुछ वॉर्टीजे (Wartyoze) और शोर्ट रैकर (Short Racker) तो बाकायदा अध्यात्मवादी योगी कही जा सकती हैं जो 140 वर्ष तक की दीर्घायु की क्षमता रखती हैं। सरीसृपों के उपपरिवार में गोह छिपकली दीवार आदि पर अपनी पकड़ के लिए प्रख्यात है। इतिहास गवाह है कि भूतकाल में सेनापतियों ने इनका सहारा लेकर ऊँचे-ऊँचे अजेय दुर्गों में प्रवेश संभव कर लिया था।

नभचरों की सामान्य विशिष्टता पंखों की उपस्थिति है, जिनकी सहायता से ये उड़ सकते हैं, परंतु विशाल शतुरमुर्ग तो पंख होते हुए भी उड़ नहीं सकता। हाँ! यह 80 किलोमीटर की आश्चर्यजनक गति से दौड़ अवश्य सकता है। इसी उपपरिवार में कोयल की उपस्थिति एक शैतान बच्चे के सदृश है। यह अपना घोंसला नहीं बनाती, कौवे

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 55

परिवार व्यवस्था के स्पष्ट संकेत वनस्पति जगत में भी मिलते हैं। वनस्पतियों की लगभग तीन लाख प्रजातियों का ज्ञान वैज्ञानिकों को है और उन्होंने इन्हें उनकी सम-आकृति, संरचना, पारिस्थितिकीय जैविक क्रियाओं आदि के आधार पर 300 परिवारों में बांट रखा है। इनमें भी कुछ पारिवारिक विशिष्टताओं से किंचित भिन्नता प्रदर्शित करते हैं और इस प्रकार अपनी अलग ही पहचान बनाते हैं। स्मरणीय है कि ऐसी भिन्नताएं नियमित परिवार व्यवस्था का ही अंग हैं।

के घोंसले में ही अंडे दे देती है। ऐसा करते समय वह यह भी ध्यान अवश्य रखती है कि जितने अंडे वह दे, उतने ही कौवे के अंडे घोंसले के बाहर फेंक दे। कौवा बेचारा उसके अंडों को भी अपना ही समझ कर देखभाल करता है और कोयल आराम से घूमती फिरती रहती है। अब कोयल को आप क्या कहना पसंद करेंगे- शैतान अथवा महाशैतान!

वनस्पति जगत्

परिवार व्यवस्था के स्पष्ट संकेत वनस्पति जगत में भी मिलते हैं। वनस्पतियों की लगभग तीन लाख प्रजातियों का ज्ञान वैज्ञानिकों को है और उन्होंने इन्हें उनकी सम-आकृति, संरचना, पारिस्थितिकीय जैविक क्रियाओं आदि के आधार पर 300 परिवारों में बाँट रखा है। इनमें भी कुछ पारिवारिक विशिष्टताओं से किंचित भिन्नता प्रदर्शित करते हैं और इस प्रकार अपनी अलग ही पहचान बनाते हैं। स्मरणीय है कि ऐसी भिन्नताएँ नियमित परिवार व्यवस्था का ही अंग हैं। वनस्पति जगत से कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं-

मटर लेग्यूमिनोसी परिवार की सामान्य पहचान है पौधों की जड़ों में उगी हुई कुछ ग्रंथिकाएँ (नोड्यूल) जो वातावरण की नाइट्रोजन को मिट्टी में स्थायीकृत करने में सहायक होती हैं और इस प्रकार उपज क्षमता की वृद्धि के लिए नाइट्रोजन खाद की आवश्यकता समाप्त कर देती हैं। यह कार्य वे अपने अंदर उपस्थित विशेष प्रकार के बैक्टीरिया के माध्यम से करती हैं। लोबिया व चना का पौधा इसी श्रेणी में आता है और बहुत से अन्य भी।

भिंडी मालवेसी परिवार के सदस्य सामान्यतः झाड़ियाँ ही होती हैं परंतु इसका एक सदस्य थेस्पेसिया पॉपुलनिया पूरी ऊंचाई का वृक्ष होता है।

खीरा, ककड़ी आदि स्वादिष्ट फल के पौधे कुकरबिटेसी परिवार के सदस्य हैं। इस परिवार की सामान्य विशिष्टता है कि पत्तियों के निकट से महीन, कोमल, लच्छेदार, लंबे तंतु (प्रतानु) निकलते हैं जिनके माध्यम से पौधा पास के किसी वृक्ष आदि पर लिपटता हुआ ऊँचा उठता चला जाता है। इस प्रकार ये लता समान होते हैं। परंतु इकबेलियम इलेटेरियम में ऐसा नहीं होता। यह प्रजाति बीजों का छितराव अथवा बिखराव (dispersal) भी बिलकुल भिन्न विधि से करती है।

परिवार व्यवस्था शाश्वत और सभ्यता का आधार है। प्रकृति में भी सर्वत्र यह व्यवस्था उपस्थित दिखाई देती है। इसीलिए विज्ञान इसको स्वीकार करता है और ब्रह्मांड को समझने के लिए इसे आधार भी बनाता है।

लेखक क्रमशः महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक के रसायन विभाग के पूर्व अध्यक्ष, वैश्य कॉलेज, रोहतक में जंतु शास्त्र के प्रोफेसर तथा महर्षि दयानंद विश्वद्यालय, रोहतक के बायोसाइंस विभाग के पूर्व प्रोफेसर हैं।

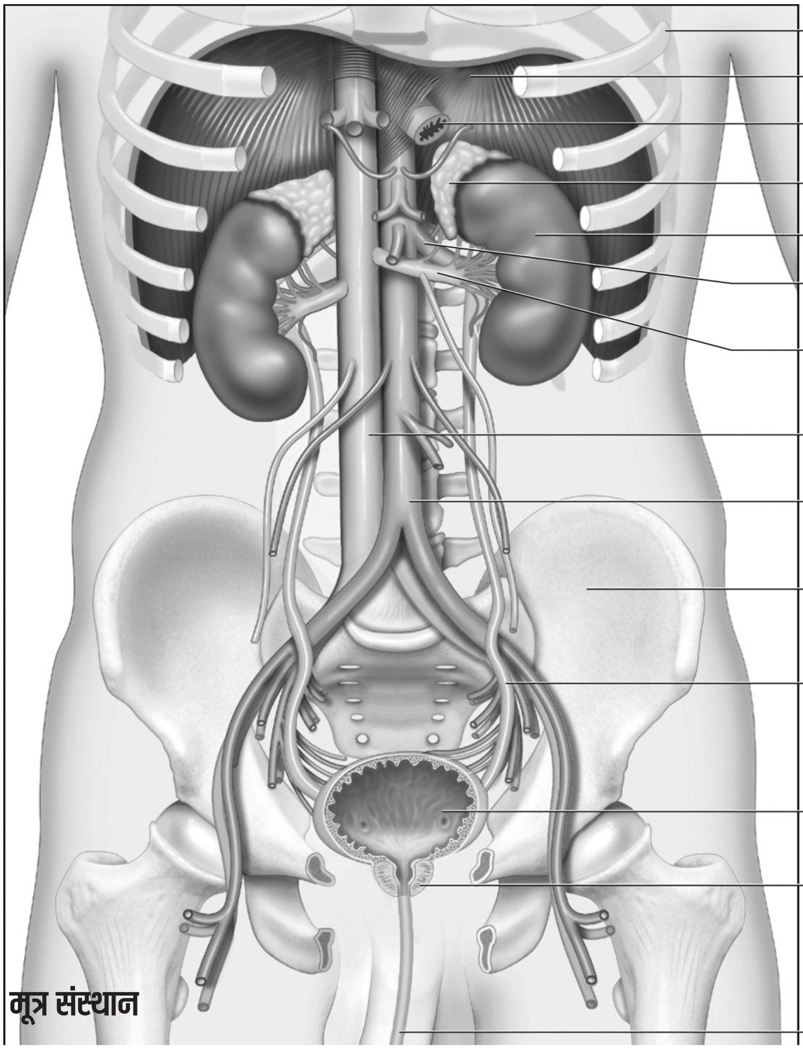

मनुष्य के स्वस्थ रहने के लिए शरीर में होने वाली विभिन्न जैविक क्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले विषैले पदार्थों का शरीर से विसर्जन बहुत आवश्यक है। यह एक सतत् प्रक्रिया है। इसे आयुर्वेद में 'मल क्रिया' कहा गया है। शरीर से विसर्जित होने वाला मूत्र भी ऐसा ही विषैला पदार्थ है। हमारे गुर्दे रक्त को छानकर मूत्र के रूप में विषैले तरल पदार्थ को अलग कर देते हैं। कभी-कभी व्यक्ति को मूत्र त्याग करने में कष्ट होता है। इस रोग को आयुर्वेद में मूत्र-कृच्छा (डिस्यूरीय) कहा जाता है। मूत्र-कृच्छ न हो इसके लिए क्या-क्या सावधानी बरतें तथा रोग की अवस्था में इसके उपचार के लिए उपयोगी 'गोक्षरू' के विषय में विस्तृत जानकारी प्रस्तुत लेख में प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य डॉ. ज्योत्सना दे रही हैं।

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 57

डॉ. ज्योत्स्ना

मूत्र कृच्छ रोग
कारण और निवारण

आयुर्वेद में स्वास्थ्य की परिभाषा बताते हुए कहा है

समदोषः स्माग्निश्च समधातुमलक्रियः
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।

यानी जिसके दोष (वात, पित्त, कफ) सम हों अर्थात् सामान्य रूप से कर्म कर रहे हों; वात, पित्त, कफ शरीर की क्रियात्मक इकाइयाँ हैं। शरीर में पाचन और चय-अपचय अग्नि का कर्म है, वह सामान्य हो; सभी धातुओं यानी ऊतक (Tissues) सामान्य हों और साथ ही साथ मल क्रिया अर्थात् मल रूप में शरीर से बाहर आने वाले (पुरीष, मूत्र, स्वेद) भी सामान्य हों, तो शरीर स्वस्थ कहलाता है। प्रसन्नता, सुख हो तो व्यक्ति मानसिक रूप से भी स्वस्थ है, तब पूर्ण स्वास्थ्य कहलाता है। इस अंक में मैं जिस ओर ध्यान दिलाना चाहती हूँ वह है कि मल क्रिया भी स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। ऐसे मौसम में जब पानी कम पीया जाए या पसीना बहुत अधिक आ रहा हो तो शरीर में जल की कमी होने से मूत्र का निर्माण प्रभावित हो जाता है। शरीर से मूत्र द्वारा विसर्जित किए जाने वाले तत्त्व शरीर से निकल नहीं पाते और परिणामस्वरूप स्थिति अस्वास्थ्यकर हो जाती है।

आयुर्वेद में इस अवस्था को मूत्र कृच्छ कहते हैं, जब मूत्रत्याग कष्ट के साथ हो। आधुनिक विज्ञान में इसे डिस्युरीय (DYSUREA - difficulty in Urination) कहते हैं।

लक्षण – मूत्र त्याग के समय दर्द या पीड़ा, असुविधा, तेज जलन, बार-बार प्रवृति लेकिन खुल कर न आना बूँद-बूँद आना, (शुरू की अवस्था में केवल बार-बार जाना पड़ता है) ठंड के साथ बुखार आना आदि हैं।

ज्यादातर यह अवस्था मूत्र के निर्माण में कमी या किसी रुकावट के कारण उसमे बैक्टीरिया के संक्रमण से होती है।

मूत्र संस्थान में वृक्क (Kidney) मूत्र वाहिनी नलिका (Ureter) बस्ति

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 58

गोक्षुरू (गोखरू)

Tribulus terrestris

गोखरू जमीन पर फैलने वाला पौधा है। चने के पत्तों के समान इसके पत्ते होते हैं, जिस पर छोट-छोटे पीले फूल आते हैं। इसके फल गोलाकार, 5 से 12 खंड युक्त, 2 जोड़ी तीक्ष्ण काँटों वाले होते हैं, जिसमें एक जोड़ा ज्यादा बड़ा होता है।

प्रयोग विधि-

इसके चूर्ण के लिए फल का प्रयोग होता है व काढ़े (क्वाथ) के लिए जड़ का।

प्रभाव-

● **हृदय पर प्रभाव** - यह हृदय की धमनियों (coronary arteries) को विस्फारित करता है। यानी फैलता है जिससे की इन धमनियों में रक्त का प्रवाह बढ़

मूत्राशय (Bladder) व मूत्रमार्ग (Urethra) आते है। इनमे से किसी के भी प्रभावित होने पर मूत्रकृच्छ की अवस्था होती है।

कौन-सा अंग प्रभावित हुआ है इस आधार पर इन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है।

● उर्ध्व मूत्रवह संस्थान का संक्रमण (Upper Urenary Tract Infection)

● अधो मूत्रवह मार्ग का संक्रमण (Lower Urinary Tract Infection)

इसमें मूत्राशय व मूत्रमार्ग प्रभावित होते हैं। ज्यादातर संक्रमण मूत्रमार्ग के द्वारा ही पहुँचते हैं। महिलाओं में मूत्रमार्ग की लंबाई कम होने के कारण इस वर्ग के संक्रमण ज्यादा होते हैं। अधिक आयु यानी 50-55 वर्ष की आयु के बाद के पुरुषों में प्रोस्टेट ग्रंथि बढ़ने के कारण मूत्र निकासी में बाधा होती है और मूत्राशय पूरी तरह खाली नहीं हो पाता व कुछ मात्रा में हमेशा मूत्राशय में बचा रहता है, जिसमे आसानी से संक्रमण हो जाते हैं। इस वर्ग के निम्न अवस्थाएँ आती हैं-

■ **मूत्राशय शोथ** (Cystitis)

यह मूत्राशय संक्रमण की अवस्था है, महिलाओं में ज्यादा मिलाता है। मूत्र मार्ग की लंबाई कम होने के कारण संभोग या मलद्वार की सफाई के समय आसानी से

जाता है। इसके कारण हृदय को रक्त की उपलब्धता बढ़ती है। यानी मायोकार्डिल इश्चिमिया (M.E) एवं Coronary Heart Disease में प्रभावी है।

● **मूत्र संस्थान पर प्रभाव-**

वृक्क (kidney) में बनने वाली पथरी को धीरे-धीरे तोड़ता है, इससे पथरी का आकार छोटा होता है। मूत्र की मात्रा बढ़ाता है। इससे पथरी धीरे-धीरे निकलती भी है। इसमें नाइट्रेट और पोटैशियम ज्यादा होने से मूत्र संस्थान पर अच्छा प्रभाव रखता है।

● **प्रजनन संस्थान पर प्रभाव-**

◆ पुरुषों में शुक्राणु की उत्पत्ति को प्रभावित करने वाले हारमोन को प्रभावित करने पर से शुक्राणु निर्माण क्रिया को प्रभावित करता है। इसके प्रयोग से शुक्राणुओं की संख्या बढती है।

◆ नपुंसकता होने पर यह काम कामना को बढ़ाता है और साथ ही शुक्राणुओं की संख्या भी बढ़ाता है। सामान्य अवस्था में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

◆ मधुमेह के रोगी या वृद्धावस्था में प्रजनन शक्ति को बढ़ाता है।

● जीवाणु रोधी- इसका काढ़ा कई प्रकार के जीवाणु जैसे- ई. कोली, सालमोनेला टायफी (टायफाइड उत्पन्न करने वाला), एम. ट्यूबरकोली (टी.बी.) को नियंत्रित करता है।

● हिपेटोप्रोटेक्टिव यानी यकृत (Liver) की रक्षा करता है।

● आमवात (Rheumatoid Artheritis) के रोगी इसके काढ़े को सोंठ के साथ लें तो लाभ होता है।

● इसके फूल का पेस्ट बालों में लगाने से बाल बढ़तें हैं।

● इसके उपयोग में कोई विषकारी प्रभाव नहीं मिले हैं बल्कि यह कैंसररोधी भी है।

मात्रा

चूर्ण 3-6 ग्राम/ प्रति दिन

काढ़ा 50-100 मी.ली./प्रति दिन

बैक्टीरिया मूत्राशय को प्रभावित कर लेते हैं। पुरुषों में बड़ी आयु में प्रोस्टेट के बढ़ने से ऐसा होता है।

इस अवस्था में बार-बार मूत्र प्रवृति होती है। पेट के नीचे के भाग में दर्द होता है। मूत्र गंदला व तेज गंध युक्त होता है, कभी-कभी रक्तमिश्रित भी हो सकता है।

■ **मूत्र मार्ग शोथ** (Urethritis)

मूत्र मार्ग की सूजन ज्यादातर किसी रसायन के संपर्क में आने से होती है जैसे कोई साबुन, क्रीम, आदि या बीमारी की अवस्था में मूत्र मार्ग में डाली जाने वाली नली (Catheter)के कारण होती है। यह यौन संक्रामक रोग (STD) के कारण भी हो सकती है। इस अवस्था में मूत्र मार्ग के छिद्र की लालिमा, सूजन व स्राव होता है। मूत्र त्याग के समय तेज जलन होती है।

■ **योनि शोथ**

किसी रसायन के संपर्क से योनी में शोथ होना या किसी वस्तु जैसे शेम्पु आदि से एलर्जी। इसमें स्वच्छता का ध्यान न रखने से बैक्टीरिया या फंगस का संक्रमण हो जाता है। इस अवस्था में योनी में दर्द, चुभन तथा बदबूदार स्राव होता है। संभोग के समय तथा सायकिल चलाने आदि में दर्द होता है।

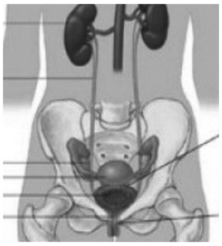

मूत्र मार्ग की सूजन ज्यादातर किसी रसायन के संपर्क में आने से होती है जैसे कोई साबुन, क्रीम, आदि या बीमारी की अवस्था में मूत्र मार्ग में डाली जाने वाली नली के कारण होती है। यह यौन संक्रामक रोग के कारण भी हो सकती है। इस अवस्था में मूत्र मार्ग के छिद्र की लालिमा सूजन व स्राव होता है। मूत्र त्याग के समय तेज जलन होती है।

■ **उर्ध्व मूत्रवह संस्थान का संक्रमण** (Upper Urinary tract Infection) इस अवस्था में वृक्क (Kidney) प्रभावित होते हैं। इस अवस्था को Pyelo nephritis कहते है। जब-जब मूत्र निर्माण करने वाली सूक्ष्म नलिकाओं (जिनसे वृक्क बनता है) में सूजन हो जाती है। इसके कई कारण हैं जैसे-गर्भवती स्त्रियों में, प्रोस्टेट के बढ़ने से, मधुमेह के कारण, वृक्क में पथरी होने से व मूत्राशय का कार्य ठीक न होने से अधिक आयु में।

इस अवस्था में- पीठ में दर्द, ठंड के साथ तेज बुखार, जी मिचलाना, उलटियाँ, बार-बार मूत्र त्याग के लिए जाने की तीव्र इच्छा, जलन के साथ थोड़ा-थोड़ा मूत्र त्याग, गंदला मूत्र।

बचाव-

● तरल की मात्रा अधिक रखें जिससे की मूत्राशय की सफाई होती रहे।

● महिलाएँ, खास तौर पर मल द्वार की सफाई के समय पीछे से आगे की ओर सफाई न करें।

● स्वच्छता का विशेष ध्यान रखें।

● रसायनों का उपयोग कम से कम करें, हमेशा साफ जल का प्रयोग करें।

उपचार-

● कोकुम, अम्लवेत्स का शर्बत पीएँ।

● गोखरू का चूर्ण गर्म पानी में थोड़ी देर ढक कर रखें फिर छानकर 10-20-मिली ग्रा. की मात्रा में 2-3 बार पीएँ। इसके साथ कुछ अजवायन भी मिलाने से दर्द में राहत मिलती है।

● गोखरू को दूध में पका कर दें।

● गोखरू के काढ़े में थोडा-सा यवक्षार मिलकर दें।

● पुनर्नवा का काढ़ा दें।

● आँवले का रस व गन्ने का ताजा रस मिलकर पिलाने से जलन खत्म हो जाती है।

● गिलोय के 20 मिली ग्रा. रस में मिश्री मिलकर देने से मूत्रकच्छ ठीक होता है।

● तरबूज को काटकर उसमे शक्कर भरकर रात भर रखें, सुबह रस निकल कर पिलाने से मूत्र की प्रकृति खुल कर होती है।

● शतावरी के रस में थोड़ी मिश्री या समभाग दूध मिलाकर पिलाना उपयोगी है।

● दो ग्राम छोटी इलायची को छिलके सहित कूटकर 250 मिली ग्रा. दूध व इसके बराबर पानी मिलाकर उसमें पकाए 2-3 उबाल दें, फिर ठंडा कर पिलाने से लाभ होता है।

● गूलर के पके फल या पत्तों का काढ़ा बनाकर सुबह-शाम पीना लाभकारी है।

● यवक्षार का एक ग्राम की मात्रा में मक्खन या घी से चाटकर, फिर दूध की लस्सी यानी पानी मिला दूध उबाल कर ठंडा किया हुआ को पिलाएँ।

● 20 ग्राम धनिया पिसा हुआ को 250 मिली ग्रा. पानी में भिगो कर रात भर रखें, सुबह छान कर मिश्री मिला कर पिलाएँ।

लेखिका यूनानी व आयुर्वेदिक कॉलेज, अलीगढ़ में प्रोफेसर हैं।

मनोगत

मान्यवर महोदय,

'मंगल विमर्श'का अक्तूबर अंक आपको भेंट करते हुए प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। पत्रिका के संबंध में सुधी पाठकों की जो प्रतिक्रियाएँ मिल रही हैं, वे हमारे लिए मार्गदर्शक हैं। डॉ. शिवकुमार खण्डेलवाल जी ने लिखा है कि अप्रैल अंक की प्रथम रचना 'अथ' में आपने मानव मन की शाश्वत वृति जिज्ञासा को जिन कुछ सूत्रों में प्रस्तुत किया है वह अति श्लाघनीय है। साथ ही 'मातृऋण चुकाए बिना मुक्ति नहीं', क्या पशुओं को मनुष्य की क्रूरता से मुक्त जीवन का अधिकार है?' तथा 'हिमालय के सीमावर्ती देशों में चीन की घुसपैठ और भारत की सुरक्षा' लेख बहुत ही पठनीय हैं।

इसी प्रकार डॉ. हिम्मत सिंह सिन्हा लिखते हैं कि 'अथ' भाव प्रवण है। पहला ही लेख पर्यावरण संरक्षण पर बहुत समसामयिक महत्त्व का और लेखक की गहन अध्ययनशीलता का प्रमाण है। ऐसे लेखों के अधिकाधिक प्रसारण की आवश्यकता है ताकि प्रदूषण से उत्पन्न भयंकर संकट का निवारण हो सके। डॉ. सतीश कुमार का लेख 'चीनी संकट से भारत की सुरक्षा' बहुत शोधपरक तथा ज्ञानवर्धक है। चीन ने कश्मीर संकट को उलझा रखा है परंतु उससे भी अधिक खतरा इस कूट योजना से पैदा हो रहा है कि चीन नेपाल के अंदर से बिहार तक रेल मार्ग बनाने का प्रयास कर रहा है। दामोदर शांडिल्य जी ने अपने लेख में बड़े सराहनीय ढंग से यह स्थापित किया है कि भारतीय संस्कृति में माता का स्थान कितना ऊँचा है, परंतु उन्होंने मातृ ऋण की बात करते-करते कुछ विसंगतियां उत्पन्न कर दी हैं, जिनका समाधान करने के लिए धर्मशास्त्रों का विस्तार से अनुशीलन करना पड़ेगा। प्रायः सभी व्यवस्थाकारों, धर्मशास्त्रों तथा ब्राह्मण ग्रंथों में ऋषि-ऋण, देवऋण तथा पितृऋण की चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है। इन तीन ऋणों में सारे ऋण समाहित हो जाते हैं, जिनसे मुक्त होने पर व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी होता है। 'पितृ' शब्द में सभी पूर्वज आ जाते हैं, श्राद्ध के दिनों में पितरों का तर्पण तथा पितृ शांति में माता, महामाता, नानी आदि का भी तर्पण होता है, इसको 'पितृ पक्ष' कहते हैं। अलग से आज तक कोई मातृ पक्ष नहीं बना है क्योंकि भारत में पिता विहीन माता की कल्पना तक मनीषियों ने नहीं की। अतः पितृ ऋण के शोधन में मातृ ऋण भी मिला रहता है। लेख बहुत

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 62

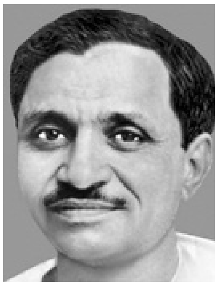

पश्चिम और भारतीय दर्शन में व्यक्ति और समष्टि को लेकर मौलिक भेद है। पश्चिम की दृष्टि में व्यक्ति, परिवार, राष्ट्र, सृष्टि सब एक-दूसरे से अलग हैं। इसके विपरीत भारतीय दृष्टि मे व्यक्ति से सृष्टि तक समग्रता से सब एक दूसरे से जुड़े हैं। इसमें कही संघर्ष और विरोध नहीं हैं। व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। इनके हित एक साथ हैं। दोनों का सामंजस्य एक साथ होना चाहिए। यही एकात्म दर्शन है।

ज्ञानवर्धक तथा गृहस्थियों को उनके गृहस्थ धर्म का बोध कराने वाला है। अति श्रेष्ठ है, इसके लिए सुधी लेखक बधाई के पात्र हैं।

मानव संसाधन मंत्रालय की हिंदी राजभाषा सलाहकार समिति के सदस्य डॉ. महेश चंद्र गुप्त लिखते हैं कि जुलाई अंक के सभी लेख पठनीय और प्रशंसनीय हैं, विशेषतः डॉ. प्रमोद कुमार दुबे का लेख 'राष्ट्रीय एकात्मता', हरि कृष्ण निगम का लेख 'राष्ट्रीय प्रेरणापुंज' एवं डॉ. जय श्री शुक्ला का लेख 'वैदिक मूल्यों के संवाहक' बहुत ही अद्‌भुत हैं।

'मंगल विमर्श' द्वारा सामाजिक विषयों पर आयोजित की जाने वाली संगोष्ठियों के क्रम में 19 जून को 'व्यक्ति और समाज' विषयक गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें शिक्षा संस्कृति न्यास के संगठन मंत्री श्री अतुल कोठारी मुख्य वक्ता थे। उन्होंने कहा कि पश्चिम और भारतीय दर्शन में व्यक्ति और समष्टि को लेकर मौलिक भेद है। पश्चिम की दृष्टि में व्यक्ति, परिवार, राष्ट्र, सृष्टि सब एक-दूसरे से अलग हैं। इसके विपरीत भारतीय दृष्टि मे व्यक्ति से सृष्टि तक समग्रता से सब एक दूसरे से जुड़े हैं। इसमें कही संघर्ष और विरोध नहीं हैं। व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। इनके हित एक साथ हैं। दोनों का सामंजस्य एक साथ होना चाहिए। यही दीनदयाल उपाध्याय जी का एकात्म दर्शन है। शंकराचार्य जी ने इसे पंचकोषीय विकास कहा है। व्यक्ति समाज केंद्रित रह सके इसके लिए अनेक व्यवस्थाएं हैं। परिवार, समूह, समाज केंद्रित करने, समाज का विकास करने के लिए बने थे। आज प्रकृति से खिलवाड़ भी व्यक्ति के बढ़ते स्वार्थ का ही दुष्परिणाम है। आज व्यक्ति आत्मकेंद्रित हो गया है। यह चिंता का विषय है। आज की व्यवस्था में भी समाजकेंद्रित रहे इसकी भी औपचारिक व्यवस्था करनी चाहिए। इसके लिए बालकों के समग्र विकास पर ध्यान देने की जरूरत है। बालकों के आध्यात्मिक विकास के लिए कुछ परंपराएँ प्रारंभ करनी होंगी-

- जन्मदिन पर दान करने की परम्परा-(समाज के लिए कुछ करने के संस्कार डालने चाहिएँ)
- स्कूलों द्वारा कोई गाँव या झुग्गी बस्ती गोद लेना-(संस्कार केंद्र के बच्चों के साथ जन्मदिन मानना)
- पक्षियों को दाना डालने, पानी पीने की व्यवस्था करना।

इस प्रकार व्यक्ति और समाज में अभिन्नता की व्यवस्था करके हम अपनी सनातन व्यवस्था व चिंतन की ओर हम जा पायेंगे और व्यक्ति व समाज के हितों में टकराव नहीं होगा।

झारखंड केंद्रीय विश्वविद्यालय, राँची में अंतरराष्ट्रीय संबंध विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर डॉ. सतीश कुमार ने कहा कि आज हम विश्व के परिप्रेक्ष्य में जानने की ज्यादा कोशिश करने लगे और अपने समाज को समझने से दूर होते गए। अपने गाँव के1970 के दौर का उदाहरण देते हुए उन्होंने बताया कि उनके गाँव से

नक्सलवाद शुरू हुआ। तब गाँव में दहशत की स्थिति थी। यह बाद में समझा कि व्यक्ति समाज से कैसे कटता है। पहले जजमानी व्यवस्था थी। सबके अपने-अपने व्यवसाय थे। ये समाजिक-आर्थिक ही नहीं, भावनात्मक व्यवस्था थी। जैसे-जैसे जजमानी व्यवस्था व भावनात्मक व्यवस्था टूटती गई वैसे-वैसे नक्सलवाद पनपता गया। अर्थात् व्यक्ति समाज से कटता गया। जैसा न्यू लिबरल थिंकर पश्चिम में कर रहे हैं वही यहाँ भी होने लगा। आज की शिक्षा व्यवस्था का दुर्गुण यही है कि हम अपने छात्रों को डॉक्टर, इंजीनियर तो बनाते हैं किंतु एक बेहतर इंसान नहीं बनाते। व्यक्ति, राज्य और समाज के बीच में अंतरंगता है। यदि हम व्यक्ति को सुचारु बनाएँगे तो समाज मजबूत होगा और फिर राज्य मजबूत होगा।

'राष्ट्र किंकर' पत्रिका के संपादक डॉ. विनोद बब्बर ने कहा कि नैतिक मूल्यों से युक्त मनुष्यों के समूह ही समाज कहलाता है, जिसमें सांस्कृतिक मूल्य जुड़े होते हैं। अप्राप्त को प्राप्त करना और उसका संरक्षण करना चाहिए। हमने शिक्षा को मूल्य से तो जोड़ा नैतिकता से नहीं, जिससे सब समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर डॉ.अविजनेश अवस्थी ने कहा कि व्यक्ति और समाज हमेशा से रहे हैं, लेकिन जब व्यक्ति किसी वाद जुड़ जाता है तो विवाद शुरू हो जाते हैं। व्यक्तिवाद और समाजवाद की अवधारणा पश्चिम की है। पारिवारिक व्यवस्था में बहुत ऐसे व्यक्ति हैं जो कमाते नहीं लेकिन खाते हैं। जो कमाएगा वो खाएगा-में व्यापार है, वहीं व्यक्तिवाद शुरू हो जाता है। अगर जहाँ भी हम अपने आप को नेपथ्य में रख कर समाज के लिए जिएँ, जिसमें मानव व पर्यावरण एवं अन्य पशु-पक्षी भी शामिल हैं। ये सहज सरल जीवन मनुष्य कल्याण की ओर ले जाता है। व्यक्ति अपनी सत्ता बचाने के लिए जब अन्य पर आक्रमण करता है वह चिंतनीय है। दूसरे पर कैसे सत्ता स्थापित की जाए की तरफ विश्व बढ़ रहा है। उससे हमें बचने की आवश्यकता है। व्यक्ति जब तक नितांत वैयक्तिक रहेगा तब तक समाज का विकास या समरसता स्थापित नहीं होगी। श्री मुन्नालाल जैन ने कहा कि समाज के निर्माण के लिए समाज की प्रथम इकाई परिवार का निर्माण हुआ और फिर उनका विकास हुआ। समाज-एक-दूसरे के विकास की धारणा है। समाज एक ऐसी कल्पना है जो किसी का नुकसान नहीं कर सकता। व्यक्ति का चरित्र, मानसिक स्तर, चिंतन जैसा होगा वह ऐसा ही समाज की तरफ ले जाएगा।

आज की शिक्षा व्यवस्था का दुर्गुण यह है कि हम अपने छात्रों को डॉक्टर, इंजीनियर तो बनाते हैं किंतु एक बेहतर इंसान नहीं बनाते। व्यक्ति, राज्य और समाज के बीच में अंतरंगता है। यदि हम व्यक्ति को सुचारु बनाएँगे तो समाज मजबूत होगा और फिर राज्य मजबूत होगा।

संगोष्ठि के मुख्य अतिथि एवं हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला के कुलपति प्रो. ए.डी.एन. वाजपेयी ने कहा कि भारतवर्ष की पूँजी का आधार अध्यात्म है। शुभारंभ ओंकार से होता है। व्यक्ति और समाज को जोड़ने वाला अध्यात्म है। भारतवर्ष में कोई भी मॉडल बिना आध्यात्मिकता के सफल नहीं हो सकता। जाति, धर्म, भाषा, राजनीति के अंतर एक साथ खत्म होते हैं, बचता है तो सिर्फ आत्म तत्त्व। समाज के स्वरूप में केवल मानव ही नहीं मानवेतर प्रजातियों को भी समाज में सम्मिलित करना पड़ेगा। पाश्चात्य दृष्टिकोण है कि मानव उनकी सुरक्षा और भक्षण दोनों कर सकता है। भारतीय दृष्टि मानवेतर

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 64

समाज की जिम्मेदारी लेती है। अंतःप्रेरणा को लेकर जब हम आगे बढ़ेंगे आध्यात्म केंद्र में रहेगा, समाज जुड़ता चलेगा और उससे राष्ट्र नीति बनेगी। अद्यतन और प्राचीन परंपराओं का विश्लेषण करें और गृहणीय को गृहण करें और जो भी त्याज्य है उसको त्याग दें। विकृतियों को छोड़ें समाज को आध्यात्मिकता से जोड़ें।

माननीय डॉ. बजरंगलाल गुप्ता जी ने समापन संबोधन में कहा कि दीनदयाल जी ने भारतीय मनीषा का युगानुकूल परिस्थिति से विश्लेषण किया। भारतीय मनीषा ने व्यक्ति को परिभाषित करते समय चतुर्आयामी कहा। उसकी चारों आवश्यकताओं की पूर्ति को आवश्यक बताया। शरीर- की आवश्यकता आहार, मन- की आवश्यकता-प्रेम, बुद्धि- की आवश्यकता- विचार और आत्मा की आवश्कता- परमतत्त्व की प्राप्ति। इसी प्रकार समाज के भी चार तत्त्व हैं- देश (जन), संकल्प, धर्म (संविधान), जीवनादर्श (लक्ष्य)।

भारतीय मनीषा ने व्यक्ति को परिभाषित करते समय चतुर्आयामी कहा। उसकी चारो आवश्यकताओं की पूर्ति को आवश्यक बताया। शरीर- की आवश्यकता आहार, मन- की आवश्यकता-प्रेम, बुद्धि- की आवश्यकता- विचार और आत्मा की आवश्कता- परमतत्त्व की प्राप्ति। इसी प्रकार समाज के भी चार तत्त्व हैं- देश (जन), संकल्प, धर्म (संविधान), जीवनादर्श (लक्ष्य)।

व्यक्ति मरणशील है समाज अमर है। समाज भारतीय चिंतन के अनुसार बनाया नहीं जाता, समाज स्वयं विकसित होकर बनता है। पाश्चात्य समाज की संरचना संवेदनहीन है- जिसका एक दूसरे से कोई तारतम्य नहीं है। आज भी कुछ उसी प्रकार की रचना बन गई है। भारतीय- संरचना सर्पिल रचना है जिसकी लेयर जैविक रूप से संवेदनाशील संबंध से जुड़ी है। हर रचना एक दूसरे से संवेदना के साथ जुड़ी है। जैविक संबंध पहले थे किंतु आज समाप्त हो गए हैं। हम न तो पुराने जमाने की प्रतिच्छाया भारत को बनाना चाहते हैं और न ही अमेरिका-रूस की तस्वीर बनाना चाहते हैं।

दीनदयाल जी ने चार तत्त्व बताए-

● शिक्षा का प्रवाह- समाज से व्यक्ति की ओर (समष्टि से व्यष्टि) हर एक व्यक्ति के विकास की जिम्मेदारी समाज करेगा। प्रतिभावान बनाए।

● कर्म व्यक्ति से समाज की ओर चलेगा।

● समाज की जिम्मेदारी है कि व्यक्ति को योगक्षेम (वेतन) की चिंता करे।

● व्यक्ति को जो कुछ प्राप्त हुआ उसे पूरा उपभोग नहीं करेगा। न्यूनतम उपयोग कर बाकी समाज को यज्ञ करेगा।

इस सब के लिए दो-तीन धरातल पर काम करना पड़ेगा।

● व्यक्तिगत आधार पर मॉडल प्रस्तुत करना।

● व्यवहार में लाने के लिए संस्थागत आधार पर मॉडल प्रस्तुत करना। इस समय के अनुरूप नए जमाने के आधार पर संस्थागत आधार के लिए प्रारुप तैयार करना।

नीतिगत परिवर्तन होना चाहिए। व्यक्ति और समाज को समझकर इन तीन धरातलों पर काम करना पड़ेगा। संगोष्ठि में प्रो. हरिराम खत्री, डॉ. नीलम राठी व सुशील जी ने भी अपने विचार व्यक्त किए।

स्नेहाकांक्षी
आदर्श गुप्ता
प्रबंध संपादक

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 65

सहयोगी वृंद

1. श्री नरेश जैन
बीए-36, शालीमार बाग,
दिल्ली- 110088

2. श्रीमती कुसुम अग्रवाल
सी-589, सरस्वती विहार,
नई दिल्ली- 110034

3. प्रो. बी.पी. खंडेलवाल
4503, एटीएस ग्रीन्स-II, सेक्टर-50,
नोएडा, उत्तर प्रदेश- 201301

4. श्री भुवनेश गर्ग
17 ए/35, भूतल, वेस्ट पंजाबी बाग, अग्रसेन
अस्पताल के पास, नई दिल्ली- 110026

5. श्री वीरेंद्र बजाज
736, सेक्टर-12, सोनीपत, हरियाणा- 131001

6. श्री नरेश कुमार
सी-1/25, मियांवाली नगर, पश्चिम विहार,
नई दिल्ली- 110087

7. डॉ. सचिन बंसल
जनता चैरिटेबल अस्पताल,
गुड़ मंडी, सोनीपत, हरियाणा- 131001

8. श्री प्रवेश गर्ग
1-7/13, पहली मंजिल, सेक्टर-16,
रोहिणी, दिल्ली- 110085

9. श्री जगदीश चंद्र अग्रवाल
ए-2/41, पश्चिम विहार,
नई दिल्ली- 110063

10. श्री नितिन अग्रवाल
श्री मंगलम्, पंप हाउस के सामने, रोड नंबर 2,
झुन्झुनू, राजस्थान- 333001

11. श्री विपुल जैन
के-67, कृष्णा नगर,
दिल्ली- 110051

12. श्री जगदीश राय गर्ग
जी-13, पुष्कर एन्क्लेव, पश्चिम विहार,
नई दिल्ली- 110063

13. प्रो. जे जीना
नेताजी सुभाष प्रौद्योगिकी संस्थान,
आजाद हिंद फौज मार्ग, सेक्टर-3, द्वारका,
नई दिल्ली- 110078

MV_Oct_2016:Layout 1 10/14/2016 1:14 PM Page 66

मंगल विमर्श
सदस्यता -प्रपत्र

मंगल विमर्श — त्रैमासिक पत्रिका

मुख्य संरक्षक	प्रधान संपादक	संयुक्त संपादक	प्रबंध संपादक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता	ओमीश परुथी	डॉ. रवींद्र अग्रवाल	आदर्श गुप्ता

सदस्यता -शुल्क

10 वर्षों के लिए ₹2000 मात्र

मंगल विमर्श की.......................... वर्षों की सदस्यता हेतु..

रुपये का ड्राफ्ट/ चैक क्रं. .... दिनांक..

बैंक... भेज रहे हैं,

कृपया.. वार्षिक सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम..

पता...

....

.... पिनकोड ....

फोन :.. मोबाइलः...

इ-मेल...

पत्रिका सदस्यता शुल्क हेतु
मंगल सृष्टि (Mangal Srushti)
के नाम चैक/ ड्राफ्ट सी-84, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 पर भेजें।
फोन नं. +91-9811166215,
+91-11-27565018

इ-मेल mangalvimarsh@gmail.com **वेब साइट** www.mangalvimarsh.in